शेर-ए-पंजाब

लाला लाज़पतराय

लेखक – डॉ. चम्पालाल गुप्त

अग्रोहा विकास ट्रस्ट

शेर-ए-पंजाब
लाला लाजपतराय

लेखक
डॉ. चम्पालाल गुप्त

स्वतंत्रता के अमर सेनानी अग्रवंश के लाल को।
मातृभूमि पर शीश चढ़ाकर रखा ऊंचा भाल को।।
अमर कीर्ति, महिमा से मंडित किया अग्रसमुदाय को।
कभी भूल सकता क्या भारत लाला लाजपतराय को।।

प्रकाशक
अग्रोहा विकास ट्रस्ट
अग्रोहा (हरियाणा) 125047

प्रकाशक
अग्रोहा विकास ट्रस्ट,
अग्रोहा धाम,
अग्रोहा (हरियाणा) – 125047

प्रथम संस्करण – 1996
द्वितीय संस्करण – 2006

मूल्य – 15/– रू.

साज–सज्जा
सिटी कम्प्यूटर
श्रीगंगानगर–335 001
फोनः 94140–88095

अनुक्रमणिका

1.	विशिष्ट व्यक्तित्व के धनी–लाला लाजपतराय	4
2.	तात्कालीन परिस्थितियां	5
3.	जन्म, संस्कार एवं पारिवारिक वातावरण	5
4.	शिक्षा–दीक्षा एवं विवाह	7
5.	हिसार में वकालत एवं सेवा–कार्य	9
6.	लाहौर में प्रस्थान	9
7.	लालाजी और आर्यसमाज	10
8.	लालाजी राजनीति में	13
9.	बंगभंग आंदोलन और लालाजी	16
10.	देश से निर्वासन और माण्डले जेल–यात्रा	17
11.	लालाजी द्वारा दोनों दलों में एकता का प्रयास	18
12.	विदेश–यात्रा	18
13.	पंजाब की घटनाएं और लालाजी	21
14.	लालाजी का पुनः भारत में प्रवेश	22
15.	लालाजी और असहयोग–आंदोलन	22
16.	लालाजी की जेल–यात्रा	23
17.	तिलक राष्ट्रीय विद्यालय और लोकसेवक–संघ की स्थापना	24
18.	गांधीजी से मतभेद	25
19.	असेम्बली के सदस्य	25
20.	साईमन कमीशन और लालाजी	25
21.	लालाजी की मृत्यु और शोक–संवेदना	27
22.	लालाजी की विविधोन्मुखी सेवाएं	27
23.	हिन्दुत्व के रक्षक–लालाजी	28
24.	दलितों के हितैषी एवं अछूतों के उद्धारक	31
25.	समाजसेवा के क्षेत्र में लालाजी	33
26.	लालाजी और महिलाओं की प्रगति	34
27.	लालाजी और युवाशक्ति	34
28.	लालाजी का शिक्षा–प्रेम	35
29.	लालाजी और हिन्दी	36
30.	लालाजी का लेखन–कार्य और पत्रकारिता	37
31.	नींव के पत्थर लालाजी	38
32.	सार्वजनिक जीवन में शुचिता और पवित्रता के पक्षधर लालाजी	39
33.	संस्थाओं के संस्थापक लालाजी	40
34.	लालाजी की उदारता एवं दानप्रियता	41
35.	लालाजी का बहुमुखी व्यक्तित्व एवं सेवाएं	42
36.	लालाजी की मृत्यु और उसका बदला	44
37.	उपसंहार।	46

लाला लाजपतराय

धन्य धन्य है, हे जननी के लाल।
तूने ऊंचा किया देश-जाति का भाल।

भारतीय स्वतंत्रता–संग्राम की लाल, बाल और पाल की त्रयी को कौन नहीं जानता? ये वे महान विभूतियां थीं, जिनके नाममात्र के स्मरण से लोगों में देशभक्ति की लहर दौड़ पड़ती है और सिर श्रद्धा से झुक जाते हैं। ये तीनों नेता देश के तीन कोनों का प्रतिनिधित्व करते थे। उन्होंने स्वाधीनता के बीज का भारत–भूमि पर अंकुरण और पल्लवन किया, देशभक्ति की मशाल जलाई और अपनी लेखनी एवं वाणी द्वारा कोटि–कोटि हृदयों को स्पंदित कर अंग्रेजों के शासन की जड़ें सदैव के लिए समाप्त कर दीं।

इसी त्रिमूर्ति के अग्रणी व्यक्तित्व थे– लाला लाजपतराय, जिन्होंने अपनी देशसेवा एवं कार्यों द्वारा न केवल अग्रसमाज को गौरवान्वित किया, अपितु सम्पूर्ण राष्ट्र के नायक बन गये।

मेरा मजहब हकपरस्ती (सत्य की पूजा) है, मेरी मिल्लत (धर्म) कौम परस्ती है, मेरी इबादत (प्रार्थना) मुल्कपरस्ती (देशसेवा) है, मेरी अदालत अन्तःकरण (हृदय) है, मेरी जायदाद मेरी कलम है, मेरा मंदिर मेरा दिल है और मेरी उमंगें सदा जवान हैं।

लाला लाजपतराय का नाम सुनते ही ऐसे तेजस्वी व्यक्तित्व का चेहरा सामने आ जाता है, जिसकी रग–रग में देशभक्ति की भावना भरी है और जो मानो हुंकार भर रणभेरी बजा रहा है–– "स्वतंत्रता मांगे नहीं मिलती। उसके लिए अग्निपथ पर बढ़ना आवश्यक है। हमें उसके लिए संघर्ष करना होगा, खून बहाना होगा।"

भारत मां के सच्चे सपूत, आजादी के अमर परवाने, पंजाब केसरी लाला लाजपतराय के इन शब्दों में ही उनके जीवन्त की कहानी छिपी है।

लाला लाजपतराय पंजाब–केसरी थे। पंजाब में वीर अनेक हुए किन्तु सिंह की उपमा केवल एक को मिली। वे थे लाला लाजपतराय। उनका जीवन पंजाब के रंगबिरंगी कुसुमावलियों का एक मोहक गुलदस्ता था, जिसमें पंजाब–धरा की सभी विशिष्टताओं की सुरभि समाई थी।

वे महाराजा रणजीतसिंह के बाद पंजाब के सबसे लोकप्रिय व्यक्तित्व के धनी थे। कई मायनों में उनसे भी बढ़ कर थे। उन जैसा

महान नेता न तो उनसे पूर्व और न ही उनके पश्चात् पैदा हुआ, जिसे उन जैसा प्यार ओर श्रद्धाभाव सम्पूर्ण देश से मिला हो। जिस प्रकार सिंह पूरे वन का अकेला राजा होता है, लालाजी पंजाब के वैसे ही उन्मुक्त सिंह थे।

उनका व्यक्तित्व हिमालय के समान विराट और बहु–आयामी था। वे तन से हिमालय और मन से गंगा थे। उनका चरित्र दुग्धधवल और आचरण विमल था। उसमें आग और पानी दोनों का समावेश था। उनके जीवन के अनेक रूप थे और हर रूप स्तुत्य एवं वरेण्य था। वे गरीबों के बंधु, शत्रुओं के काल, हिन्दुओं के प्राण, कांग्रेस के स्तम्भ और लाल–बाल–पाल त्रयी के प्रमुख सूत्रधार थे। उनकी वाणी में ओज तथा लेखनी में अद्भुत सम्मोहन था। उनके व्यक्तित्व में लेखक, पत्रकार, समाज–सुधारक, देशभक्त सबकी विशेषताएं समाई थीं। 'पंजाब केसरी' का शब्द सच्चे अर्थ में उनके लिए सार्थक था। दुनिया में शायद ऐसी कोई लेखनी नहीं बनी, जो लालाजी के विरूद्ध कुछ लिख सके। वास्तव में वे खरा सोना थे, जिनके शुद्ध और निर्मल प्रकाश से न केवल अग्रवाल–समाज अपितु सम्पूर्ण राष्ट्र ज्योतित और आभामण्डित हुआ।

तत्कालीन परिस्थितियां

जिस समय लालाजी का जन्म हुआ, उस समय देश पर अंग्रेजों का प्रभुत्व था। भारत की सभ्यता, संस्कृति, धन, धर्म सब जर्जर हो चुके थे। स्वाभिमान की चिनगारी क्षीण पड़ चुकी थी। अंधविश्वास, रूढ़िवाद और विषमताएं समाज में पैर फैलाये थीं। अंग्रेजों का शोषण–दमनचक्र पूरे जोरों पर था। भारतीयों के प्रति उनका व्यवहार समुचित न था। उनके होटलों पर 'भारतीय कुत्तों का प्रवेश निषिद्ध' जैसी तख्तियां लगी रहती थीं। देश में पाश्चात्य सभ्यता, संस्कृति, अंग्रेजी भाषा का बोलबाला सर्वत्र दिखाई देता था। देश में घोर निराशा का भाव छाया हुआ था। ब्रिटिश साम्राज्य से टक्कर लेने का नेतृत्व कौन करे, यह प्रश्न मुंह बाये खड़ा था।

जन्म, संस्कार एवं पारिवारिक वातावरण

ऐसी परिस्थितियों में लालाजी का जन्म 28 जनवरी, 1865 को फिरोजपुर जिले के ढूढ़ि के ग्राम में मुंशी राधाकिशन के यहां हुआ। उनके पिता एक सामान्य अध्यापक थे और परिवार का वातावरण घरेलू था। वे

उन व्यक्तियों में नहीं थे, जिन्हें जन्म के साथ ही सुविधाएं बपौती में मिलती हैं अथवा जहां नेतृत्व के गुण रक्त में मिले होते हैं। किन्तु ऐसी विषम परिस्थितियों में जन्म लेकर भी उन्होंने जो कुछ किया, वह अत्यंत महत्वपूर्ण है, इतिहास की अमूल्य धरोहर है। उसका महत्व इसलिए है, क्योंकि उन्होंने अपनी पृष्ठभूमि का स्वयं निर्माण किया और नींव के पत्थर बने, जिस पर स्वाधीनता भारत का भव्य महल खड़ा हो सका।

लालाजी का परिवार मिली–जुली संस्कृति का प्रतीक था। उनके पिता राधाकिशन अग्रवाल होते हुए भी मुस्लिम धर्म के प्रति आकर्षण रखते थे। उन्होंने अपनी जवानी के दिनों में ही कुरान तथा अन्य मुस्लिम ग्रंथों का स्वाध्याय कर लिया था। उनकी मातामही सिक्ख धर्म की अनुयायिनी थी और पितामह राधाराम अग्रवाल जैन धर्म के उपासक थे। आपकी माता पर भी सिक्खधर्म का प्रभाव था।

परिवार की इस समन्वित संस्कृति का ही परिणाम था कि उनका जीवन पंजाब की महान परम्पराओं का प्रतीक बन गया, जिसमें सांस्कृतिक सामंजस्य और विभिन्न वर्गों के बीच प्रेम का अमृत घुला हुआ था।

लाला लाजपतराय की माता श्री बसन्ती कौर अत्यंत ही दयालु और धार्मिक प्रवृत्ति की थीं। लालाजी में अच्छे संस्कारों के बीजारोपण में उनकी माताश्री महत्वपूर्ण रही। कहते है कि लालाजी जब छोटे ही थे, तो ऐसे लड़कों की संगत में पड़ गये, जो जुआ खेलते थे। उनकी संगत में पड़ उन्होंने भी एक पैसा दांव पर लगा दिया और वह उसे जीत गए। घर जाकर जब वह पैसा उन्होंने माता को दिया तो माता को बहुत बुरा लगा। उन्होंने बालक लाजपत को कमरे में बंद कर दिया तथा खाने को कुछ न दिया। स्वयं भी भूखी रहीं। इससे लाजपतराय को अपने कृत्य पर लज्जा का अनुभव हुआ। उन्होंने अपनी माताजी से माफी मांगी और भविष्य में कभी जुआ न खेलने की प्रतिज्ञा भी की।

इस प्रकार लालाजी को जन्म से ही अच्छे संस्कार मिले। वास्तव में वह कुल धन्य और संतान बड़ी भाग्यवान होती है, जिनके माता–पिता चरित्रवान और सुसंस्कारों से युक्त हों। लालाजी इस दृष्टि से अपने आपको भाग्यशाली मानते थे। धार्मिक विदुषी माता की कोख से जन्म, उदार विचारों वाले पिता के संरक्षण में पालन–पोषण और महर्षि दयानंद जैसे गुरू की प्राप्ति को वे अपना अहोभाग्य समझते थे।

उन्होंने अपनी जीवनी में एक स्थान पर लिखा है– "मैंने पितृभक्ति अपने पिता से सीखी और दान, उदारता और अतिथि–सेवा की सुशिक्षा मुझे अपनी माता जी से मिली। मेरे परोपकारी और लोकसेवा के भावों को वे सदैव उत्साहित करतीं और प्रसन्न होकर आशीर्वाद भी प्रदान करती थीं। वास्तव में सौ आचार्यों के समान एक माता की शिक्षा होती है।"

वास्तव में लालाजी के जीवन–निर्माण में घर के वातावरण का भी बहुत कुछ हाथ रहा। एक लेखक ने इस संदर्भ में बहुत ही सुंदर ढंग से लिखा है – "माता के सदुपदेश से 'ध्रुव' में ईश्वर–भक्ति का संचार हो सका और सर्वसम्पन्नता प्राप्त हुई। देवल देवी की शिक्षा ने आल्हा और ऊदल को वीर सैनिक बनाया। माता के ही गर्भ से वीर अभिमन्यु को व्यूह–भेदन का ज्ञान प्राप्त हुआ और माता की कृपा से ही नेपोलियन बोनापार्ट का नाम ऊंचा हुआ। इसी मातृशक्ति के प्रताप से प्रातः स्मरणीय लाल लाजपतराय लोकप्रसिद्ध नेता बन सके।"

लालाजी का परिवार सादगी–प्रिय था। आर्थिक स्थिति भी सामान्य थी किंतु उन्हें इससे जरा भी असंतोष न हुआ। इससे उनमें सरलता, सादगी, संतोष आदि भावनाओं का विकास हुआ। उनमें कठोर परिश्रम करने की प्रवृत्ति आई तथा उन्होंने अपने सुख–दुख को दूसरों में बांटना सीखा। यही कारण है कि हम उनके जीवन में ऐसी अनेक घटनाएं पाते हैं, जबकि उन्होंने किसी अच्छे कार्य के लिए अपनी सम्पूर्ण सम्पत्ति दान में दे दी अथवा स्वयं के कष्टों की परवाह न करते हुए दूसरों की भलाई के लिए कूद पड़े। लाला लाजपतराय का जीवन उन लाखों युवकों के लिए आदर्श था, जिन्हें जीवन–निर्माण के लिए सुविधाएं विरासत से नहीं मिलतीं और जो परिस्थितियों से जूझते हुए अपने जीवन का निर्माण करते हैं।

शिक्षा-दीक्षा एवं विवाह

लालाजी ने प्रारम्भिक शिक्षा गांव में ही प्राप्त की। बाद में वे लुधियाना के मिशन स्कूल में प्रविष्ट हुए और हाई स्कूल की शिक्षा प्राप्त की। जब उनके पिता जी की अम्बाला में नियुक्ति हुई तो आप अम्बाला में पढ़ने लगे और पंजाब विश्वविद्यालय से मैट्रिक की परीक्षा उत्तीर्ण की।

आपने 11 वर्ष की अल्पावस्था में ही एक साथ मैट्रिक की दो परीक्षाएं दीं– एक परीक्षा कलकत्ता एजूकेशन बोर्ड के पाठ्यक्रम से और

दूसरी पंजाब एजूकेशन बोर्ड के पाठ्यक्रम से। वे कलकता एजूकेशन बोर्ड की परीक्षाम में प्रथम श्रेणी से उत्तीर्ण हुए।

वे आगे पढ़ते कि उससे पूर्व 13 वर्ष की अवस्था में ही उनके पैरों में विवाह की बेड़ियां डाल दी गईं। उधर अस्वस्थता ने आ घेरा। परन्तु जादू वह जो सिर चढ़ बोले और लाला लाजपतराय इन विषम परिस्थितियों में भी आगे बढ़ते गए।

16 वर्ष की आयु में ही वे अध्ययन करने के लिए लाहौर पहुंच गए और यूनिवर्सिटी कालेज, लाहौर में प्रवेश प्राप्त कर लिया। सौभाग्य से उन्हें गुरूदत्त, हंसराज, चेतनानंद राय, शिवराज जैसे प्रतिभाशाली मित्र मिल गए। वहीं से उन्होंने इण्टरमीडिएट की परीक्षा उतीर्ण करने के साथ ही मुख्तारी की परीक्षा भी उत्तीर्ण कर ली। उस समय उन्हें किस–किस प्रकार की कठिनाइयों का सामना करना पड़ा और वे किस प्रकार आगे बढ़े, आइये उन्हीं के शब्दों में देखें–

"पहले दो–तीन महीनों तक मुझे कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। मेरी आंखों ने मुझे तकलीफ दी। उसके अलावा मुझे कई बार भूखा रहना पड़ा। काफी संघर्ष के बाद मुझे 8 रूपये की छात्रवृत्ति विश्वविद्यालय से प्राप्त करने में सफलता मिली। मैं लाहौर महज आर्टिस्ट की डिग्री लेने आया था, लेकिन होस्टल के कुछ साथियों के कहने पर मैंने कानून के स्कूल में भी दाखिला ले लिया। अपनी आठ रूपये की मासिक छात्रवृत्ति में से दो रूपये तो मैं गवर्नमेंट कालेज में शिक्षा–शुल्क के रूप में भरता था, तीन रूपये कानून के स्कूल में और एक रूपया होस्टल–शुल्क के रूप में।

मेरे पिता जी मुश्किल से 8–10 रूपये महीना भेज पाते थे और मुझे उसी से गुजारा करना पड़ता था। कानून की किताबें बड़ी महंगी होती थीं किन्तु मैं उनमें से बहुत ही जरूरी किताबें ही खरीदता था, वह भी सस्ते दामों पर पुरानी किताबें या फिर मैं दोस्तों की किताबों पर निर्भर करता था। यही किफायत मैंने आर्ट्स की किताबें खरीदने में बरती और उन्हें उधार मांग कर काम चलाया।

मेरे लिए माता–पिता बहुत कष्ट उठाने को तत्पर और कर्ज लेने तक को तैयार थे, किन्तु मैं उन्हें कठिनाइयों में नहीं डालना चाहता था। इसलिए मैं बड़ी सादगी से रहता था।"

उन्होंने एक स्थान पर लिखा है – "मैं खाली बैठने को बुरा समझता हूं। मैंने अपना खाना स्वयं बनाया है, कपड़े खुद धोए हैं और

कमरा स्वयं साफ किया है। कई बार शाम को भोजन करने के स्थान पर पांच पैसे की डबल रोटी खाई है, इसलिए नहीं की मेरे पास पैसे नहीं थे, इसलिए कि मैं अपने ऊपर एक पैसा भी व्यर्थ खर्च न करना चाहता था।

इस प्रकार आपदाओं, बाधाओं से जूझता यह युवक निरन्तर आगे बढ़ता गया। उसने अपने आपको केवल विद्यालय की शिक्षा तक सीमित न रखा, अपितु ऐतिहासिक या धार्मिक जो भी साहित्य मिला, उससे अपने ज्ञान का संवर्द्धन किया। परिणामस्वरूप भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति के प्रति उनका लगाव परिपुष्ट होता गया। युवक लाजपतराय को पढ़ाई के साथ अपने परिवार की भी चिंता थी। वे अच्छी तरह जानते थे कि उनके परिवार की आर्थिक स्थिति अच्छी नहीं है और अधिक समय तक अपनी पढ़ाई के लिए उन पर भार बन कर नहीं रह सकते।

इसलिए लाहौर से वकालत की परीक्षा देने के बाद वे हिसार आ गये। वकालत परीक्षा में उत्तीर्ण छात्रों की सूची में उनका स्थान दूसरा था।

हिसार में वकालत और सेवा–कार्य

देश एवं राष्ट्र की सेवा के लिए अपेक्षित है कि पहले घर की स्थिति समुचित हो। जीविका की चिंता से मुक्त हुए बिना न परिवार की सेवा हो सकती है और न देश की। इसलिए उन्होंने वकालत पढ़ी और उसे अपनी जीविका का माध्यम बनाया। वकालत भी ऐसी कि उनकी अकाट्य दलीलों को सुनकर अंग्रेज सरकार के न्यायालय थर–थर कांपने लगते थे, किन्तु वकालत के साथ–साथ उनके समाजसेवा के कार्य भी चलते रहे। आर्यसमाज में रूचि होने के कारण वे उसकी गतिविधियों में भाग लेते ही रहते थे, साथ ही आपने हिसार में एक संस्कृत–विद्यालय की नींव भी रखी। हिसार के म्युनिसिपल बोर्ड के सदस्य चुने जाने पर आपने उसको अवैतनिक मंत्री के रूप में तीन साल तक सेवाएं प्रदान की और समाज के अनाथों, दलितों एवं महिलाओं के हित में कई कार्य किए।

लाहौर में प्रस्थान

लालाजी ने हिसार में वकालत तो प्रारम्भ कर दी किन्तु यह कार्य आपकी शक्ति एवं क्षमताओं के अनुरूप न था। वहां लालाजी के व्यक्तित्व के विकास के लिए समुचित अवसर न थे। उस समय लाहौर पंजाब का हृदय और समस्त प्रकार की गतिविधियों का केन्द्र बना हुआ था। इसलिए

लालाजी ने लाहौर को अपना मुख्य स्थान बनाने का निश्चय किया और वे लाहौर चले गये।

यह वह युग था, जबकि भारतीय नवयुवक एक ओर तो पाश्चात्य सभ्यता व संस्कृति की ओर उन्मुख हो रहे थे, दूसरी और आर्यसमाज भारतीय जनता में अपने क्रांतिकारी विचारों से लोगों में नई चेतना का संचार कर रहा था। आर्यसमाज की विचारधारा के कारण सम्पूर्ण समाज में राष्ट्रीय प्रेम की भावना हिल्लोरें लेने लगी थी।

पं. गुरूदत्त, लाला हंसराज आादि के प्रभाव से आपका सम्पक्र आर्यसमाज से हुआ और शनैःशनैः यह झुकाव बढ़ता ही गया। उसी समय पं. गुरूदत्त ने फ्री डिबेटिंग क्लब की स्थापना की। इसके सदस्य वाद–विवाद रूप में इसमें भाग लेते थे। लालाजी का झुकाव भी इस संस्था की ओर हुआ और वे उसके सदस्य बन गए।

लालाजी जैसे ओजस्वी व्यक्ति के लिए उस समय के लाहौर के वातावरण से अपने आपको अधिक समय के लिए मुक्त रखना संभव न था। इसलिए वे आर्यसमाज के सक्रिय सदस्य बन गये थे।

लालाजी और आर्यसमाज

लाला लाजपतराय आर्यसमाज को अपनी मां, महर्षि दयानंद को अपना गुरू तथा वैदिक धर्म को अपना पिता कहते थे। आर्यसमाज में उनके प्रवेश का उद्देश्य था– आर्य–संस्कृति और गौरव की रक्षा करना, जिससे वे उसकी अमृतोपम धारा से भारत के कण–कण को पवित्र बना सकें।

लालाजी ने आर्यसमाज को नया रूप दिया। उसे सच्चे अर्थों में आर्य जनता की प्रतिनिधि संस्था बनाया और यह तथ्य स्थापित करने में सफलता प्राप्त की कि आर्यसमाज ही हिन्दू–जनता को नई दिशा दे सकता है। उन्होंने आर्यसमाज को नया रूप दिया। उसे सच्चे अर्थों में आर्य जनता की प्रतिनिधि संस्था बनाया और यह तथ्य स्थापित करने में सफलता प्राप्त की कि आर्यसमाज ही हिन्दू–जनता को नई दिशा दे सकता है। उन्होंने आर्यसमाज के माध्यम से राष्ट्रवासियों की सुषुप्त चेतना को जागृत करने का प्रयास किया। उनके सहयोग से माता–पिता और गुरू तीनों धन्य हुए। वास्तव में किसी संस्था में ऐसे सपूत कितने होते हैं?

1883 में स्वामी दयानंद की मृत्यु के बाद जब आर्यसमाज में

रिक्तता सी आ गई, तो लालाजी ने धैर्य एवं आत्मविश्वास से काम लेते हुए उसमें नवप्राण का संचार किया। उन्होंने उनकी मृत्यु के बाद लाहौर में उनके नाम से एक विद्यालय की स्थापना की योजना बनाई और देखते–देखते डी.ए.वी. कालेज की स्थापना कर दी, जिसकी शाखाएं शनैः शनैः सम्पूर्ण भारत में फैल गईं और आज डी.ए.वी. संस्थाओं का राष्ट्र के शिक्षा प्रसार में महत्वपूर्ण योगदान है।

बिना सरकारी अनुदान के शिक्षण–संस्था चलाने का यह महत्वपूर्ण प्रयास था। उसके लिए धन–संग्रह हेतु आपने जबरदस्त प्रयास किए। आपने कालेज–कमेटी में 6 वर्ष तक मंत्रित्व का कार्यभार संभाला और अवैतनिक रूप से कार्य कर उसे प्रगति के नये–नये सोपान दिए। आप उसके उपसभापति रहे। आपने लाला हंसराज जी को प्राचार्य का भार सौंपा और स्वयं इतिहास–शिक्षक के रूप में निरन्तर 25 वर्ष तक संस्था को अवैतनिक सेवाएं प्रदान करते रहे।

आपने डी.ए.वी. कालेज की स्थापना द्वारा ही संतोष नहीं किया, अपितु आर्यसमाज के माध्यम से राष्ट्रीय शिक्षणालयों की स्थापना में भी अभूतपूर्व योगदान दिया। आपने अपनी आयु के सर्वोत्तम 25 वर्ष इस संस्था के उन्नयन में लगा दिए। आपने अपनी सारी कमाई और मित्रों द्वारा दी गई सम्पूर्ण सहायता कालेज को अर्पित कर दी। आपका तन–मन–धन सब उसी के लिए समर्पित था। संस्था की सेवा के बदले न स्वयं कुछ लेना और न अपने परिवार वालों को कुछ लेने देना, लाला लाजपतराय जैसे महान व्यक्तित्व की विशेषता ही हो सकती थी।

"तुमने डी.ए.वी. कालेज की सेवा का व्रत लिया है। बड़ी खुशी की बात है किन्तु याद रहे, इसके लिए मैं तुम्हें कालेज से वृत्ति नहीं लेने दूंगा। व्यय के लिए जो तुम्हें आवश्यक होगा, मैं तुम्हें जीवन–भर देता रहूंगा।"

ये शब्द लालाजी ने अपने अनुज दलपतराय को उस समय कहे थे, जब उन्होंने एम.ए. उत्तीर्ण कर निश्चित वृत्ति पर डी.ए.वी. कालेज में प्रोफेसरी करने का विचार प्रकट किया था। कैसा था आर्यसमाज के प्रति उनका प्रेम और त्याग? आज तो इस प्रकार की कल्पना करना ही असम्भव सा प्रतीत होता है।

लालाजी ने आर्यसमाज के माध्यम से देशवासियों में राष्ट्रीयता की भावना भरने का जबरदस्त प्रयास किया। बाल–विवाहों का विरोध किया, विधवा–विवाह का समर्थन किया और हिन्दू–समाज में आई

कुरीतियों के उन्मूलन का सशक्त प्रयास किया। उन्होंने समुद्र–यात्रा–निषेध के विरूद्ध वातावरण बनाकर भारत के पश्चिम से सम्पक्र के द्वारा खोले और पूर्व तथा पश्चिम के समन्वय का प्रयास किया। उन्होंने आर्यसमाज का जन–जन में प्रचार करके उसे जनसाधारण का आंदोलन बना दिया और यह सिद्ध करने का प्रयास किया कि आर्यसमाज ही आर्यसंस्कृति का प्रतिनिधित्व करने में समर्थ है।

आर्यसमाज के सिद्धान्तों के प्रचार–प्रसार के लिए लालाजी ने दूर–दूर तक भ्रमण किया। उन्होंने अपनी लेखनी तथा वाणी द्वारा उसमें नई शक्ति भर दी। उन्होंने समाज की शैक्षिक, धार्मिक और सामाजिक गतिविधियों का विस्तार किया। यदि यह कहा जाये कि वे पंजाब तथा हरियाणा में आर्यसमाज की लोकप्रियता के सबसे बड़े स्तंभ थे तो अतिश्योक्तिपूर्ण न होगा।

लालाजी को आर्यसमाज में कितने कार्य एक साथ करने पड़ते थे? इससे उनकी सेवाओं का अनुमान लगाया जा सकता है। डी.ए.वी. कालेज का दायित्व और देखभाल, आर्यसमाज की प्रधानता, ऐंग्लो–वैदिक कालेज समाचार पत्र का मानद सम्पादन, भारतसुधार तथा अनेक पत्रों के लिए नियमित रूप से रचनाओं का लेखन, आर्यसंस्थाओं एवं पत्रों के लिए धनसंग्रह तथा साथ ही परिवार के निर्वाह हेतु – वकालत। इतने कार्य एक साथ करने के बावजूद उन्होंने कभी उफ तक नहीं की।

उनका कथन था– "मैंने तो काम करने के लिए जन्म लिया है तथा जितना अधिक काम मिलेगा, उतना ही करूंगा। समाज सेवा से बढ़कर शरीर का सदुपयोग किसके लिए हो सकता है?" किन्तु कार्य करने की भी अपनी एक सीमा होती है। उस सीमा का उल्लंघन करने पर आप बीमार पड़ गये तथा दो माह तक आपको रूग्ण–शैय्या पर रहना पड़ा।

बाद में जब आर्यसमाज के दो दल बन गए– एक दयानंद के कट्टर अनुयायियों का और दूसरा समयानुसार आर्यसमाज में संशोधनवादियों का और दोनों ही दलों के सदस्य जब आर्यसंस्थाओं पर कब्जा करने के लिए सिर–फुटौवल करने लगे तो अपने हाथों से आर्यसमाज को पल्लवित–पुष्पित करने वाले इस महामानव की आत्मा कराह उठी। उन्होंने दोनों को फटकारते हुए कहा– "समाज सिद्धान्तों का नाम है, न कि ईंटो और पत्थरों का। हम जनता की सेवा तथा जीवन–सुधार के लिए आर्यसमाज में सम्मिलित हुए हैं, न कि मकानों पर

अधिकार जमाने अथवा उन पर लड़ने–झगड़ने के लिए।

बाद में जब उनकी क्रांतिकारी गतिविधियां बढ़ गईं और कुछ लोगों ने आपत्ति करनी शुरू कर दी कि लालाजी के आर्यसमाज में रहने से उसे हानि पहुंच सकती है और उसे राजद्रोही संस्था घोषित किया जा सकता है तो आपने निर्भीक रूप से अपने विचार प्रकट करते हुए कहा था– "कुछ लोग कहते हैं कि आर्यसमाज को छोड़ दो, पर मैं आर्यसमाज का नेता बनने के लिए नहीं, अनुयायी बनने के लिए आया हूं। आर्यसमाज जैसी धार्मिक संस्थाओं को राजनीति से दूर ही रहना चाहिए। अन्यथा उसके आध्यात्मिक एवं समाजसुधार के अन्य कामों में बाधा पड़ेगी। यदि उनके आर्यसमाज में रहने से अनिष्ट होने की शंका है तो वे उसकी कार्यकारिणी तथा प्रबंधक समिति के सभी पदों से इस्तीफा देने को उद्यत हैं किन्तु आत्मा से आर्य धर्म के साथ वे सदैव जुड़े रहेंगे और धर्म तथा मातृभूमि की रक्षार्थ सर्वस्व अर्पित करने के लिए तत्पर रहेंगे।" लालाजी आर्यसमाज की साप्ताहिक सभाओं में नियमित रूप से जाते थे।

संस्कृत के प्रसिद्ध कोष–ग्रंथ अमरकोष में आर्य शब्द की व्याख्या करते हुए कहा गया है कि– "महाकुल (उत्तम कुल) में उत्पन्न सभ्य, सज्जन एवं परोपकार–परायण मनुष्य ही आर्य है।" लालाजी केवल नाम से ही आर्य नहीं थे, उनमें आर्य के सभी लक्षण सच्चे अर्थों में विद्यमान थे। जब तक सूर्य और चंद्र रहेंगे, आर्यसमाज का अस्तित्व रहेगा, लालाजी का नाम भी स्वर्णाक्षरों में आभामण्डित रहेगा।

लालाजी राजनीति में

पंजाब वीरों की भूमि है। वहां का कण–कण वीरों की रक्त–फुहारों से अभिषिक्त है। वीरों ने निरन्तर पंजाब की भूमि को अपने उष्ण शोणित से सीच वीर–प्रसू–उर्वरा बनाया हैं। शौर्य और बलिदानों में इस धरा ने विशेष प्रतिमान स्थापित किए हैं।

लाला लाजपतराय भी पंजाब की इसी धरा पर उत्पन्न हुए और उन्होंने अपने शौर्य व बलिदान द्वारा उसे नई अर्थवत्ता प्रदान की। वे आर्यसमाजी थे और स्वामी दयानंद के अनन्य भक्त थे। स्वामी जी ने भारत की प्राचीन परम्पराओं, स्वराज्य एवं स्वदेशी वस्तुओं के प्रयोग पर विशेष बल दिया था। स्वामी जी के अनन्य शिष्य होने के कारण उन पर उनके विचारों का गहरा प्रभाव पड़ा और उनमें प्रबल राष्ट्रीयता की भावना घर करने लगी।

1888 में जब आप वकालत के कार्य में व्यस्त थे, तभी लोकमान्य तिलक ने 'स्वतंत्रता हमारा जन्म सिद्ध अधिकार है' का उद्घोष किया और भारत की स्वाधीनता–हेतु जनता का आह्वान किया। उसी समय से आप का मन राष्ट्र सेवा के लिए उमड़ पड़ा। आप अपने आपको जनमानस में उमड़ती चेतना से अलग नहीं कर सके और पंजाब की राजनीति में वही स्थान प्राप्त कर लिया, जो तिलक को महाराष्ट्र तथा विपिनचंद्र पाल को बंगाल में प्राप्त था। आप लाल, बाल और पाल की त्रयी में राष्ट्रीय नेताओं की अग्रिम पंक्ति में थे।

लाला लाजपतराय पक्के राष्ट्रवादी थे। उनका इस सिद्धान्त में विश्वास था कि प्रत्येक राष्ट्र को अपने आदर्शों को निश्चित करने और उन्हें क्रियान्वित करने का अधिकार है। उन्होंने इस बात पर बल दिया कि भारत को शक्तिशाली स्वतंत्र र.जनीतिक जीवन का निर्माण करके अपने को सबल बनाना चाहिये। वे भारतीय राष्ट्रवाद को एक प्रबल शाक्ति मानते थे। उनका कहना था कि राष्ट्रवाद शहीदों के रक्त से फलता–फूलता है, दमन से उसको अधिक बल मिलता है और भारत की राजनीतिक मुक्ति स्वराज्य द्वारा ही हो सकती है।

इन्हीं विचारों को लेकर लालाजी 23 वर्ष की अवस्था में ही कांग्रेस के अधिवेशनों में सम्मिलित होने लगे थे। प्रथम बार वे 1888 में इलाहाबाद के कांग्रेस–अधिवेशन में सम्मिलित हुए, जबकि कांग्रेस को स्थापित हुए केवल तीन वर्ष ही हुए थे। उस समय लाला लाजपतराय राजनीति के नौसिखिये थे किन्तु उन्होंने उस समय कांग्रेस के मंच से जो भाषण दिये, उससे वे कांग्रेस के प्रभावशाली कार्यकर्त्ता बन गए। जिस समय कांग्रेस की सारी कार्यवाही अंग्रेजी में होती थी, आपने अपने भाषण में हिन्दुस्तानी का प्रयोग किया। उन्होंने यह जतला दिया कि यदि कांग्रेस को जनसाधारण की प्रतिनिधि संस्था बनाना है तो देश की भाषा का प्रयोग करना होगा।

इसके साथ ही लालाजी ने यह प्रस्ताव रखा कि कांग्रेस के अधिवेशन में आधा दिन शिक्षा, उद्योग एवं अन्य आवश्यक विषयों पर भी विचार होना चाहिए। कार्य की दृष्टि से यह ठोस उपलब्धि थी।

लालाजी ने अपने भाषण में सर सैयद अहमदखां के कांग्रेस विरोधी विचारों का भी मुंहतोड़ जबाव दिया।

लाला लाजपतराय की इस प्रभावपूर्ण वक्तृता का ही परिणाम था

कि कांग्रेस का अगला अधिवेशन लाहौर में करने का निश्चय किया गया। यह पंजाब में कांग्रेस का पहला अधिवेशन था, जो बड़ी सफलता के साथ सम्पन्न हुआ। विशेष बात यह थी कि लालाजी न तो इस सम्मेलन की स्वागत–समिति के अध्यक्ष थे और न ही मंत्री, किन्तु सम्मलेन की सारी सफलता का श्रेय उन्हें मिला। उनकी गणना पंजाब के अग्रणी नेताओं में होने लगी।

लालाजी कांग्रेस में देशभक्ति की भावना से आए थे किन्तु जब उन्होंने देखा कि कांग्रेस भी आपसी गुटबाजी से मुक्त नहीं है और यहां भी पदों की लड़ाई है तो उनका मन कुछ समय के लिए कांग्रेस के लिए खिन्न हो गया और आप 1890 से 1893 तक उसके किसी अधिवेशन में सम्मिलित न हुए।

लाहौर में कांग्रेस का अधिवेशन क्या आमंत्रित किया कि आप सरकार की आंख की किरकिरी बन गए। ब्रिटिश सरकार ने अनुभव कर लिया कि आप सरकार–विरोधी प्रतिक्रियावादी शक्तियों के संगठन में संलग्न है। परिणामस्वरूप आप पर कड़ी नजर रखी जाने लगी। उन दिनों कांग्रेस के संचालन का भार दादा भाई नौरोजी, गोखले आदि नरम दल के नेताओं के हाथ में था। उनके विचार आपसे मेल नहीं खाते थे। उधर महाराष्ट्र में लोकमान्य तिलक का प्रभाव बढ़ रहा था। लाला जी उनके विचारों से अत्यधिक प्रभावित थे। अतः आप दोनों ने मिलकर कांग्रेस की नीतियों को उग्र बनाने का प्रयत्न किया। आपका प्रबल विरोध हुआ। सूरत–अधिवेशन में तो यह विरोध प्रखर रूप में प्रकट हुआ किन्तु अंततः आपके विचारों की विजय हुई।

लालाजी का मत था कि– "यदि भारत स्वतंत्रता प्राप्त करना चाहता है तो उसे अंग्रेजों से भिक्षावृत्ति त्याग स्वयं के पैरों पर खड़ा होना होगा।" उन्होंने 1897 में महारानी विक्टोरिया की हीरक–जंयती पर लाहौर में विक्टोरिया की मूर्ति लगाने का विरोध किया और कहा – "इस धन से गरीबों और अछूतों की सहायता की जानी चाहिए।"

आपने प्रिंस ऑफ वेल्स के भारत आगमन पर स्वागत का भी विरोध किया। उन्होंने कहा कि दुर्भिक्ष के कारण जब देश में त्राहि–त्राहि मची हो, लाखों लोग भूख से मर रहे हों, ऐसे अवसर पर युवराज का स्वागत करना कोटि–कोटि भारतीय जनता के जलते घावों पर नमक छिड़कने के समान होगा।

बंगभंग – आंदोलन और लालाजी

1905 में बंगभंग आंदोलन हुआ। लार्ड कर्जन की गलत नीतियों के विरोध में सारा देश जाग कर एक हो गया। सरकार ने जन–आंदोलन को कुचलने के लिए दमन–चक्र का सहारा लिया। लालाजी ने पंजाब में घूम–घूम कर जनचेतना को जागृत किया। उन्होंने अपने ओजस्वी भाषणों एवं लेखनी से जनता में आग–सी भर दी। स्वदेशी आंदोलन तथा बहिष्कार के पक्ष में जनमत को जागृत करने के लिए उन्होंने दिन–रात एक कर दिया। इस सम्बंध में उन्होंने कांग्रेस के बनारस–अधिवेशन में जो भाषण दिया, वह ऐतिहासिक था। भाषण क्या था, देश–प्रेम जलते हृदय के उद्‌गार थे। उन्होंने देशसेवा का व्रत लेकर इस आंदोलन के नेतृत्व का निश्चय किया।

1857 के विरोध की चिनगारियां यद्यपि शान्त हो चुकी थीं, फिर भी सरकार ने पंजाब में सिंचाई और मालगुजारी की दरें बढ़ा दीं। सरकार का यह कार्य दीन–हीन कृषकों के रक्त चूसने जैसा था। लालाजी ने अजीतसिंह के सहयोग से सरकार की इस नीति का प्रबल विरोध किया। परिणाम–स्वरूप 1907 में सम्पूर्ण पंजाब में क्रान्ति की एक लहर–सी पैदा हो गई।

लालाजी ने ऐसी स्थिति में गोखले के साथ इंग्लैंड की यात्रा की। उसके बाद भी 1908 और 1910 में पुनः इंग्लैंड गये और वहां के लोगों को ब्रिटिशशाही के अत्याचारों एवं दमन–चक्र से परिचित कराया। उन्होंने जब देखा कि गुलाम देश के नागरिकों की बात कोई नहीं सुनता तो उन्होंने ब्रिटिश जनता से सिंहनाद करते हुए कहा–

"भारत की जनता जागृत हो चुकी है और वह साम्राज्यवाद के आवरण को फाड़ फेंकना चाहती है। उन्हें निश्चय हो गया कि स्वावलम्बन और स्वराज्य के बिना स्वतंत्रता का कोई मार्ग नहीं।" उन्होंने अपनी बात को आगे बढ़ाते हुए कहा– "अंग्रेज भीख मांगने से अधिक और किसी बात को नापंसद नहीं करता। मैं समझता हूं कि भिक्षुक इसी योग्य है कि उससे घृणा की जाए। अतः हमें अंग्रेजों को दिखा देना चाहिए कि हम भिक्षुक नहीं हैं।"

आम जनता ने इस बात का प्रबल विरोध किया कि किसी भी शुभ अवसर पर अंग्रेजों को आमंत्रित किया जाए अथवा पुष्पमालाओं से उनका स्वागत हो। वे चाहते थे कि कांग्रेस अपनी नीति बदले, अग्निपथ

पर आगे बढ़ना सीखे और सत्य का पक्ष ले।

उनकी बातों का तिलक और विपिनचंद्र पाल ने समर्थन किया। सारा देश लाल, बाल और पाल के साथ हो गया और सम्पूर्ण देश में भयंकर आक्रोश की ज्वाला फूट पड़ी। स्वदेशी आंदोलन ने जोर पकड़ लिया। विदेशी वस्त्रों की होली जलाई जाने लगी।

देश से निर्वासन और माण्डले जेल–यात्रा

यद्यपि लाला लाजपतराय का अब तक का कार्य कानून की सीमाओं के भीतर था, किन्तु वे अपनी उग्र वक्तृता एवं देश–भक्तिपूर्ण कार्यों से क्रांतिकारी दल के नेता समझे जाने लगे। अंग्रेजी पत्रों ने उन पर जनता को भड़काने के आरोप लगाने शुरू कर दिये। सरकार ने उन्हें पाबंद किया परन्तु लालाजी कब झुकने वाले थे? उस समय लालाजी देश में ही नहीं, अन्तरराष्ट्रीय ख्याति प्राप्त कर चुके थे। सरकार उन्हें गिरफ्तार भी नहीं कर सकती थी। अतः सरकार ने कूट नीति से काम लेते हुए रेगुलेटिंग एक्ट के अन्तर्गत इन्हें गिरफ्तार कर देश से निवार्सन की सजा दे दी और गुपचुप से माण्डले की जेल में भेज दिया।

लालाजी के इस देश–निर्वासन का जब जनता को पता चला तो देश में विद्रोह की आंधी सी खड़ी हो गई। सारा भारत उसके विरोध में एक हो खड़ा हो गया। लालाजी को भी इस सजा का पूर्वाभास हो गया था। उस समय उन्होंने अपने परिवार को सान्त्वना देते हुए जो पत्र लिखा, उससे उनकी दिलेरी का परिचय मिलता है। उन्होंने लिखा– "चाहे जो भी आपत्ति आ पड़े, आप अधीर न होना। जो आग से खेलता है, कभी–कभी अपना मुख जलाने का अवसर भी उसे आन मिलता है। शासकों की कार्यवाही की आलोचना करना आग से खेलना है। यदि मुझे कोई चिंता है तो इस विचार से है कि आपको कष्ट होगा। अतः कृपया, मुझे आप इस बात का विश्वास दिलायें कि मेरी गिरफ्तारी से आप बिल्कुल नहीं घबरायेंगे। कुछ भी हो, यह समय कायरता दिखाने का नहीं, हमें सब कुछ वीरों की तरह ही सहना है।"

माण्डले जेल में लालाजी से कैदियों जैसा बर्ताव किया गया। उन्हें खाने–पीने के लिए बासी भोजन दिया जाता था। उन्हें किसी से मिलने–जुलने की इजाजत नहीं थी। यहां तक कि समाचार पत्र भी पढ़ने के लिए नहीं दिये जाते थे।

लालाजी संकोची प्रवृत्ति के थे। वे अपने आपको देश के नेता के

रूप में प्रकट करना नहीं चाहते थे किन्तु निर्वासन की सजा ने उन्हें देश के शीर्षस्थ नेताओं की पंक्ति में ला बिठाया। शासन का शाप उनके लिए वरदान बन गया।

जनता के प्रबल विरोध एवं आक्रोश को देखते हुए सरकार को अन्त में झुकना पड़ा और 6 मास 9 दिन बाद उन्हें माण्डले जेल से रिहा कर दिया गया। लालाजी ने 18 नवम्बर 1907 को लम्बे निर्वासन के बाद ज्योंही लाहौर की धरती पर पैर रखा, जनता आपके स्वागत के लिए टूट पड़ी। समस्त लाहौर शहर को रोशनी से जगमगाया गया और लालाजी को पंजाब–केसरी के यशस्वी सम्बोधन से सम्बोधित किया गया।

निवार्सन से लालाजी की देश–भक्ति की भावना और अंग्रेजों के प्रति आक्रोश और तीव्र हो गया। वे देश के कोने–कोने घूम कर क्रांति का संदेश देने लगे। उनके भाषणों की भी जनता में जोरदार प्रतिक्रिया होने लगी। देश में क्रांति और एकता की लहर–सी दौड़ पड़ी। क्रांतिकारियों ने सरकार से बदला लेने के लिए बम–पिस्तौलों एवं गुरिल्ला–युद्ध का सहारा लेना प्रारम्भ कर दिया।

लालाजी द्वारा दोनों दलों में एकता का प्रयास

इसी समय सूरत में कांग्रेस का अधिवेशन हुआ। तिलक ने लालाजी का नाम अध्यक्ष पद के लिए प्रस्तावित किया किन्तु तत्कालीन परिस्थितियों को देखते हुए लालाजी ने व्यापक राष्ट्रीय हित में अपना नाम वापिस ले लिया। उन्होंने आवश्यकता को अनुभव करते हुए गरम और नरम दलों को मिलाने की भी जबरदस्त कोशिश की किन्तु कांग्रेस का विभाजन रूक न सका। अन्ततः, कांग्रेस दो गुटों में बंट गई। लालाजी के हृदय को इससे तीव्र आघात लगा। उन्होंने अपना ध्यान रचनात्मक कार्यों की ओर अग्रसर कर दिया।

पारिवारिक आघात

1911 में लालाजी के एक पुत्र का देहावसान इंग्लेंड में हो गया। इससे पूर्व उनके जामाता का निधन भी हो चुका था। इसका उन्हें भारी सदमा पहुंचा किन्तु वे निरन्तर देश–सेवा में जुटे रहे और उनकी लग्न में कोई कमी नहीं आई।

विदेश यात्रा

उस समय राजनीति के कार्य का अभिप्राय देश को अंग्रेजी

शासन से मुक्त कराना था। लालाजी के समकालीन नेताओं का विचार था कि इस कार्य को सफल बनाने के लिए ब्रिटिश लोकमत को अपने पक्ष में करना बहुत आवश्यक है। ऐसा समझा जाता था कि "ब्रिटेन के मजदूर–दल का बहुत बड़ा भाग भारत को उत्तरदायी शासन देने के पक्ष में है। रेम्जे मेक्डानल्ड तथा उनके मित्र भारत–हितैषी हैं। ऐसे समय में भारत के कुछ नेता ब्रिटेन में जाकर पार्लियामेंट के सदस्यों को अपने अनुकूल बना सकें तो भारत को औपनिवेशिक स्वराज्य की प्राप्ति हो सकती है।"

इसी सलाह को मानते हुए लालाजी के नेतृत्व में एक प्रतिनिधिमंडल 1914 में इंग्लैंड गया। आपने वहां अनेक संस्थाओं में भारत की वर्तमान स्थिति पर भाषण देकर तथा ब्रिटिश पार्लियामेंट के सदस्यों से मिल कर वहां के जनमानस को भारत के अनुकूल बनाने का प्रयत्न किया। उन्होंने भारत की स्थिति के सम्बंध में लेख लिखे, भाषण दिये और यात्रा से वापसी के समय कई यूरोपीय देशों की यात्रा करने की योजना बनाई। किन्तु उसी समय दुर्भाग्य से प्रथम विश्व–युद्ध छिड़ गया। सरकार ने परिस्थिति का लाभ उठाते हुए उनकी भारत–वापसी पर प्रतिबंध लगा दिया।

इस महायुद्ध में लालाजी भारत की ओर से किसी भी प्रकार की सहायता ब्रिटिश सरकार को दिए जाने के विरोधी थे किन्तु उदारवादियों के प्रबल समर्थन से भारत ने मित्र राष्ट्रों की सहायता की। उनका विश्वास था कि भारतवासियों की इस राजभक्ति को देश ब्रिटिश अधिकारी युद्ध–समाप्ति के बाद उन्हें सत्ता सौंप देंगे। लालाजी ने इस कार्य को अनुचित व देशभक्ति से रहित माना। उनका दृष्टिकोण सही सिद्ध हुआ, क्योंकि युद्ध–समाप्ति के बाद ब्रिटिश सरकार ने भारतवासियों को किसी भी प्रकार की स्वतंत्रता देने से मना कर दिया।

लालाजी अमेरिका में

लालाजी ने युद्ध के समय अमेरिका में रहने और वहां से भारत के स्वतंत्रता–आंदोलन को बल देने का निश्चय किया। वे 14 नवम्बर 1914 को अमेरिका चले गये। वहां उन्होंने अमेरिकी गतिविधियों को निकट से अनुभव किया। उस समय अमेरिका ही एक ऐसा देश था, जहां भारतीय क्रांतिकारियों को शरण मिलती थी।

अमेरिका में लालाजी ने वहां के उग्रवादी नेताओं, प्रगतिशील पत्रकारों एवं विभिन्न विद्वानों से सम्पक्र किया। उन्होंने वहां के जनजीवन

का अध्ययन कर उस पर एक पुस्तक भी लिखी। उनके लेख विविध पत्र–पत्रिकाओं में छपने लगे और धीरे–धीरे अमेरिका में उनकी लोकप्रियता बढ़ने लगी।

उन्होंने अमेरिका में इण्डियन होमरूल नामक संस्था की स्थापना की और स्वयं उसके प्रधान बने। जनवरी 1917 में उसके माध्यम से उन्होंने 'यंग इण्डिया' नामक पत्रिका का प्रकाशन प्रारम्भ किया। उन्होंने वहां एक सूचना–क्रेंद की भी स्थापना की, जो भारत में होने वाली घटनाओं की जानकारी देता था। उनके इन प्रयत्नों से सम्पूर्ण विश्व में भारतीय स्वाधीनता के पक्ष में सहानुभूतिपूर्ण वातावरण का निर्माण होने लगा। अंग्रेज सरकार ने बौखला कर उनके 'यंग इण्डिया' पत्र के ब्रिटेन प्रवेश पर पाबंदी लगा दी किन्तु वहां के सांसदों एवं जनमत के प्रबल विरोध के कारण इस आदेश को वापिस लेना पड़ा।

उस समय ब्रिटिश पत्रों द्वारा प्रचार किया जा रहा था कि भारत में राजनैतिक जागरण नाम की कोई वस्तु नहीं है। आम जनता ब्रिटिश शासन को चाहती है और उनका मत है कि भारतवासी इतने योग्य नहीं है कि वे देश के शासन को चला सकें। अतः भारत में ब्रिटिश शासन का बने रहना स्वयं उनके हित में है।

लाला लाजपतराय ने ब्रिटिश पत्रों के इस षड्यंत्र का पर्दाफाश किया। उन्होंने अपने लेखों एवं भाषणों से इन भ्रांतियों को दूर करने के लिए शक्ति लगा दी। उन्होंने 'तरूण भारत' नामक पुस्तक लिखी और बड़े सुन्दर ढंग से प्रतिपादित किया कि भारत की जनता ब्रिटिश सरकार की गुलामी के विरोध में है और वह देश को स्वतंत्र कराने के लिए बड़े से बड़ा बलिदान करने के लिए कृतसंकल्प है।

आपने इस पुस्तक की प्रतियां ब्रिटिश सांसदों को भी भिजवाई। इससे उनकी लोकप्रियता में अभिवृद्धि हुई। उन्हें लगा कि भारत यदि स्वाधीन हो गया तो ब्रिटिश शासन उस पर मनमानी नहीं कर सकेगा।

उस समय अनेक अमेरिकनों का भी यही विश्वास बना हुआ था कि ब्रिटिश शासन का बने रहना स्वयं भारत के हित में हैं किन्तु लालाजी ने अपने सतत प्रयासों से अमेरिकनों के इस दृष्टिकोण को बदलने में सफलता प्राप्त की। उन्होंने यह सुस्थापित किया कि ब्रिटिश शासन भारत की प्रगति के लिए अभिशाप है और उसे तुरन्त हटाया जाना समय की आवश्यकता है।

लाला लाजपतराय ने पहले तो यह प्रचार अपने ही साधनों से

किया किन्तु बाद में तिलक भी उनके सहयोगी बन गए। तिलक उस समय भारत में डॉ. एनीबेसेंट के सहयोग से इण्डियन होमरूल लीग की स्थापना कर चुके थे। यह संस्था विदेशों में भारतीय स्वतंत्रता के लिए जोरदार कार्य कर रही थी। तिलक ने लीग के कोष से 17000/– लालाजी को अमेरिका भिजवाए। इससे लालाजी का उत्साह और भी बढ़ गया और कई गुणा शक्ति के साथ अपने लक्ष्य की प्राप्ति हेतु जुट पड़े। लालाजी ने 'तरूण भारत, भारत का इंग्लेंड पर णिं, भारत के लिए आत्मनिर्णय' जैसी अनेक पुस्तकें लिखीं और उनका जर्मनी, रूस, फ्रांस, इटली, स्पेन आदि देशों में प्रचार किया। इन पुस्तकों का विदेशों की विभिन्न भाषाओं में अनुवाद हुए, जिससे विश्व के लोगों को भारत के स्वाधीनता–आंदोलन के सम्बंध में जानकारी मिली। आपके विचारों का इतना गहरा प्रभाव पड़ा कि आप अमेरिका में भारत के अनौपचारिक राजदूत समझे जाने लगे। उनका व्यक्तित्व अत्यन्त ही प्रभावपूर्ण था।

पंजाब की घटनाएं और लालाजी

उस समय आजादी के आंदोलन का नेतृत्व गांधीजी ने संभाल लिया था। सरकार ने प्रथम विश्व–युद्ध के बाद भारतीय जनता को संतुष्ट करने के लिए मेंटेग्यू–चेम्सफोर्ड सुधार प्रस्तुत कर दिये थे किन्तु भारतीय जनता उनसे संतुष्ट नहीं थी। इसी बीच सरकार ने रोलट एक्ट का मसविदा ब्रिटिश संसद में रख दिया, जिसका भारत में तीव्र विरोध हो रहा था। स्थान–स्थान पर उसके विरोध में जनसभाएं और आंदोलन हो रहे थे। पूरा देश आंदोलित था। जनता में भयंकर आक्रोश था।

ऐसे समय में 13 अप्रेल 1919 को जलियांवाला बाग–काण्ड घटित हो गया। ब्रिटिश शासन ने हजारों निहत्थे देशभक्तों पर गोली चला महान बर्बरता का परिचय दिया। गांधीजी ने विरोध स्वरूप असहयोग आंदोलन चालू कर दिया।

लालाजी इन समाचारों को सुन बड़े दुखी थे। वे चाहते थे कि भारत जाकर वे जनता के सुख–दुख में शामिल हों, किन्तु भारत में प्रवेश के लिए उन्हें अनुमति न मिल रही थी। उन्हें भारत लौटाने के लिए जहाज में स्थान नहीं दिया जा रहा था। इस प्रकार की स्थिति में उन्होंने अपने मित्रों के माध्यम से भारतवासियों को जो संदेश भेजा, वह उनके हृदय की भावनाओं को प्रकट करने के लिए पर्याप्त है। उन्होंने लिखा– "प्रिय मित्रों! मैं आपको कैसे बताऊं कि इस समय पंजाब के बारे में मैं

क्या अनुभव कर रहा हूं। मेरा हृदय इस समय भरा हुआ है किन्तु आवाज मूक है। मैंने बहुत कोशिश की है कि इस कष्ट के समय मैं आपके साथ रहूं और आपके कष्ट बांटू परन्तु मैं अपने प्रयास में असफल रहा हूं। मैं शहीद नहीं कहलाना चाहता, पर आप सबके संकट की घड़ी में आपके साथ काम आना चाहता हूं। मेरा हृदय दुखी है और आत्मा घायल।''

उन्होंने पंजाब के युवाओं से अपील की कि वे इस विपत्ति में बहादुरी, अन्तरात्मा एवं धैर्य से व्यथित नेताओं का साथ दें।

उन्होंने यह भी लिखा – ''ऐसे समय में जबकि देशवासी भयंकर विघ्नबाधाओं से टक्कर ले रहे हैं, उनकी आत्मा अपने आपको अमेरिका में पाकर भयंकर तड़पन का अनुभव कर रही है। मुझे ऐसा लगता है कि जैसे मैं कोई भयंकर अपराध कर रहा हूं।''

लालाजी का पुनः भारत में प्रवे श

अन्ततः 1920 की शाही घोषणा ने लालाजी के भारत–प्रवेश के द्वार खोल दिए। लाला जी को भारत में आने की अनुमति मिल गई। लगभग सात वर्षों के लम्बे प्रवास के बाद 20 फरवरी 1920 को लालाजी ने बम्बई में अपने देश की धरती पर पुनः पैर रखे। बम्बई से लाहौर के मार्ग में उनका जोरदार अभिनन्दन हुआ। देश ने उनके स्वागत में पलक–पांवड़े बिछा दिए।

लालाजी ने देशसेवा के लिए वकालत का व्यवसाय त्याग दिया और गौरव से कहा– ''वे अब किसी धार्मिक सभा अथवा समाज का काम नहीं करेंगे। देशसेवा से बढ़ कर कोई धर्म नहीं हैं। भारत माता की सेवा से इस समय मैं कदम पीछे नहीं हटाऊंगा।'' मातृभूमि से वर्षों से बिछुड़ा उनका हृदय अपनी मातृभूमि के उद्धार के लिए भयंकर रूप से तड़प उठा। अब उन्हें एक क्षण के लिए भी ब्रिटिश साम्राज्य का भारत में बने रहना खलने लगा। पंजाब के घटना–स्थलों को देख उनका हृदय रो पड़ा। वे हजार गुणा शक्ति से देश के स्वाधीनता–आंदोलन में कूद पड़े और अपनी पूरी शक्ति लगा दी।

लालाजी और असहयोग–आंदोलन

इसी समय 1920 में कांग्रेस का कलकत्ता में विशेष अधिवेशन बुलाया गया। गोखले और लोकमान्य तिलक की उस समय मृत्यु हो चुकी थी। देश में निराशा का वातावरण था। लालाजी से कांग्रेस की

बागडोर संभालने और अधिवेशन की अध्यक्षता करने का आग्रह किया गया। लालाजी ने बड़ी सहृदयता से उसको स्वीकार कर लिया।

लालाजी ने उस अधिवेशन में जो अध्यक्षीय भाषण दिया, वह भारतीय स्वाधीनता–आंदोलन की अमूल्य निधि है। वह अत्यंत ही उत्साह एवं जोश से परिपूर्ण था। उन्होंने देशवासियों को सुधारों के रूप में अंग्रेज सरकार के बहकावे में न आने के लिए सचेत करते हुए कहा कि वे पूरी रोटी (स्वराज्य) से कम कोई वस्तु स्वीकार न करें और आधी रोटी की इच्छा त्याग दें। उन्होंने देशवासियों के समस्त मतभेदों को भुला कर राष्ट्रीय भावना का परिचय देने के लिए आग्रह किया।

यद्यपि वे गांधी जी के असहयोग–आंदोलन और बहिष्कार के पूर्ण पक्ष में न थे, किन्तु अध्यक्ष के नाते उन्होंने उसका विरोध न किया और यह प्रस्ताव इस अधिवेशन मे पारित हो गया। लालाजी तन–मन–धन से इस आंदोलन को सफल बनाने के लिए जुट पड़े। उन्होंने पंजाब में आंदोलन के पक्ष में एक जबरदस्त लहर पैदा कर दी। सरकार का दमनचक्र तीव्र होता गया। एक के बाद एक नेताओं की गिरफ्तारी होने लगी। लालाजी ने गांधीजी से परामर्श किया कि वे इस आंदोलन में गिरफ्तारी दें या बाहर रहकर आंदोलन का संचालन करें। गांधीजी ने कहा– "वे न तो गिरफ्तारी से बचने और न ही गिरफ्तार होने का प्रयास करें।" लालाजी ने अपने पिता के नाम पर चलने वाले राधाकिशन हाई स्कूल को राष्ट्रीय विद्यालय का रूप दे दिया। उनका सबसे कठिन कार्य था– तिलक स्वराज्य कोष के लिए एक करोड़ रूपये का कोष एकत्र करना, जैसा कि कांग्रेस कार्य–समिति ने प्रस्ताव पारित किया था। लालाजी ने तब तक आराम नहीं किया, जब तक कि पंजाब ने अपने हिस्से का रूपया एकत्र न कर लिया।

लालाजी की जेल–यात्रा

सरकार लालाजी को पकड़ने के लिए कृतसंकल्प थी और किसी बहाने की खोज में थी। लालाजी को राजद्रोह के भाषण के आरोप में गिरफ्तार कर लिया गया। जिस अपराध में डेढ़ माह की सजा होती थी, उसमें आप को डेढ़ वर्ष के कारावास की सजा सुनाई गई। उन्होंने देशवासियों से कारावास के लिए इस आशा के साथ विदाई ली कि राष्ट्र और मातृभूमि की प्रतिष्ठा उनके हाथ में सुरक्षित रहेगी।

वे जेल में रहते हुए भी देशवासियों को प्रबोधन देते रहे। जेल में

उन्हें असह्य यातनाएं दी गईं। इससे वे बीमार पड़ गये। उन्हें क्षय रोग हो गया। लगभग दो वर्ष की कठोर यातना के बाद आपको 16 अगस्त 1923 को बिना शर्त रिहा कर दिया गया।

जेल से मुक्त होने के बाद आप कुछ समय के लिए सोलन चले गये और स्वास्थ्य लाभ किया। राष्ट्र के लिए उन्हें अपने प्राणों की भी चिंता न थी। खराब स्वास्थ्य के नाम पर वे मूक होकर नहीं बैठ सकते थे। उन्होंने उसी समय वीर सावरकर और अरविंद घोष जैसे राष्ट्रीय नेताओं से भेंट की और लाहौर को अपना स्थायी आवास बना लिया। वहां से वे 'पीपुल' नामक पत्र का भी प्रकाशन करने लगे। उन्होंने गांधीजी को पत्र लिखा– "हम अपने मनोरथ को पूरा करने के लिए, जब तक चाहिये और जितनी चाहियें, तकलीफें बरदाश्त करने को तत्पर हैं।"

तिलक राष्ट्रीय विद्यालय और लोकसेवक–संघ की स्थापना

लालाजी ने अनुभव किया कि देश में प्रशिक्षित कार्यकर्ताओं का बहुत अभाव है। साथ ही उन्होंने अनुभव किया कि गांधीजी के आह्वान् पर राजकीय विद्यालयों को छोड़ कर आने वाले विद्यार्थियों और कार्यकर्त्ताओं के अध्ययन के लिए लाहौर में कोई विद्यालय नहीं है। उन्होंने इस कमी को दूर करने के लिए तिलक विद्यालय की स्थापना की। आपने इस विद्यालय के लिए स्वयं 4000 का दान दिया और एक भवन जिसका नाम लाजपतराय–भवन था, संस्था को दे दिया। इस समय यह भवन लाहौर की गिनी–चुनी इमारतों में से एक था और यह स्वयं उनके रहने के लिए था किन्तु आपने राष्ट्र–सेवा के लिए इसे अर्पित कर दिया और स्वयं एक पुराने मकान में रहने के लिए चले गये।

इस महाविद्यालय ने सरदार भगतसिंह और राजगुरू जैसे अनेक देशभक्तों को जन्म दिया। आपने अंग्रेजी साप्ताहिक पत्र 'पीपुल' का भी प्रकाशन किया, जिसने नवजागरण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

आपने स्वाधीनता–आंदोलन की आवश्यकता को अनुभव करते हुए लोकसेवक–संघ नामक संस्था की भी स्थापना की। इस संस्था का कार्य ऐसे राष्ट्रीय कार्यकर्ताओं को तैयार करना था, जो जीवन–निर्वाह मात्र के लिए अपेक्षित साधन लेकर पूर्ण समर्पित भावना से देश के लिए कार्य कर सकें। आपके प्रयत्नों से संघ ने कार्यकर्ताओं की लम्बी फौज खड़ी कर दी, जो आवश्यकता के समय आंदोलन में जेल जाने हेतु सबसे

आगे तैयार रहते थे और जिनका कार्य देश के लिए मर मिटना ही था। स्व. लाल बहादुर शास्त्री इसी संस्था की देन थे।

गांधीजी से मतभेद

लालाजी बेलगांव कांग्रेस–अधिवेशन में सम्मिलित हुए। इस अधिवेशन के अध्यक्ष स्वयं गांधीजी थे। इस अधिवेशन में गांधीजी और लालाजी के बीच मतभेद की खाई और बढ़ गई। गांधी जी चाहते थे कि कांग्रेस के प्रत्येक सदस्य को चरखा चलाना और सूत कातना अनिवार्य कर दिया जाए किन्तु लालाजी का मत था कि ऐसा करना ढोंग को बढ़ावा देने के अलावा कुछ न होगा। (सबके सब चरखा चला कर खादी नहीं पहन सकते) परिणामस्वरूप तनावपूर्ण वातावरण में अधिवेशन की समाप्ति हुई।

असेम्बली के सदस्य

1925 में लालाजी असेम्बली के सदस्य चुने गये और जनवरी 1926 में उन्होंने स्वराज्य–पार्टी की सदस्यता भी स्वीकार कर ली किन्तु जब उन्होंने पाया कि स्वराज्यवादियों का मुख्य उद्देश्य विधानसभा की कारवाई में अड़ंगा लगाना मात्र है और उससे कोई उपलब्धि संभव नहीं है तो उन्होंने स्वराज्य–पार्टी से त्याग पत्र दे दिया और एक राष्ट्रीय दल की स्थापना में मदनमोहन मालवीय का सहयोग दिया। 1926 में वे भारतीय विधानसभा के पुनः सदस्य चुन लिये गये।

साईमन कमीशन और लालाजी

माण्टेग्यू चेम्सफोर्ड सुधार में यह व्यवस्था की गई थी कि दस वर्ष के बाद इन सुधारों की जांच के लिए एक कमीशन बिठाया जायेगा, जो भारत को उत्तरदायी शासन देने पर भी विचार करेगा। इस कमीशन की नियुक्ति 1929 में की जानी थी किन्तु सरकार ने दो वर्ष पहले ही 1927 में सर साईमन की अध्यक्षता में एक कमीशन की नियुक्ति कर दी। इस आयोग के सभी सदस्य अंग्रेज ही रखे गये और उसमें कोई भारतीय न था। जनता ने इसे अपना अपमान समझा और कमीशन में भारतीय प्रतिनिधियों की नियुक्ति की मांग की किन्तु सरकार ने उनकी मांग की ओर ध्यान नहीं दिया। सरकार के इस तिरस्कार–पूर्ण व्यवहार को देख कर जनता में आक्रोश की लहर दौड़ गई। सम्पूर्ण नेताओं ने एकमत से इसका बहिष्कार किया और काले झण्डों से स्वागत करने का निश्चय किया। जहां–जहां भी यह कमीशन जाता, जनता काले झण्डे दिखाती और विरोध प्रदर्शन करती।

30 अक्टूबर, 1928 को यह कमीशन लाहौर आने वाला था। लाहौर में लालाजी के नेतृत्व में कमीशन का विरोध करने का निश्चय किया। भारी भीड़ स्टेशन पर एकत्र हो गई। कमीशन के प्रबल विरोध से सरकार बौखला गई और धारा 144 लगा कर जलसा–जलूस पर पाबंदी लगा दी, लेकिन जनता के उत्साह का कोई वारपार न था। भीड़ उमड़ती ही जा रही थी। सरकार की चेतावनी का जनता पर कोई प्रभाव न पड़ रहा था।

ज्योंही कमीशन ने लाहौर की धरती पर पैर रखा, 'साईमन वापिस जाओं, भारत भारतीयों का है', के नारों से आकाश गूंज उठा। पुलिस ने जनता को तितर–बितर होने की सलाह दी किन्तु जनता सिर पर कफन बांधे खड़ी रही। लालाजी ने जुलूस को अन्यत्र ले जाने से इंकार कर दिया।

अचानक पुलिस ने निर्दोष निहत्थे लोगों पर गोली चलाने की आज्ञा दे दी। आदेश दिया गया कि जो मरता है, उसे मरने दो, जो बचता है, उसे घायल करो। बीट अगेन एण्ड अगेन (मारो और फिर मारो)। लाठियों के प्रहार से जनता में भगदड़ सी मच गई किन्तु जुलूस हटने का नाम नहीं ले रहा था। लाला लाजपतराय को लाठियों का विशेष निशाना बनाया गया। उनकी छाती पर एक–एक करके लाठियां पड़पने लगीं किन्तु वह वृद्ध केसरी हिमालय की तरह अडिग, छाती फैलाये सब कुछ सहता रहा। इससे युवकों के हृदय तड़प उठे, क्योंकि वे लाठियां लालाजी पर नहीं, भारत के गौरव पर पड़ रही थी। उसी समय रायजादा हंसराज ने आगे बढ़ कर लाठियों का प्रहार अपने ऊपर लेना प्रारम्भ कर दिया। लालाजी की छाती, कंधे एवं शरीर पर गम्भीर चोटें आईं। उनका शरीर लहू–लुहान हो गया। किन्तु लालाजी हटे नहीं, उन्होंने कहा– "ये चोटें विदेशी सरकार का अत्याचार नहीं, हमारी गुलामी का दण्ड है। इस वारदात का हमें बदला लेना होगा। बदला खून खराबा करना नहीं, स्वतंत्रता प्राप्त करना है।" वे लोगों की अपार भीड़ को अपने व्यक्तित्व द्वारा नियन्त्रित करते रहे और उसे काबू में रखा।

संध्या के समय लाहौर में लालाजी के नेतृत्व में एक विशाल जलसे का आयोजन हुआ। लालाजी ने उस जलसे में बुलंद आवाज में कहा– "उनके शरीर पर किया गया प्रत्येक प्रहार और लाठी की चोटें ब्रिटिश साम्राज्य के ताबुत पर अंतिम कीलें सिद्ध होगी।" उन्होंने यह भी कहा कि "यदि मैं मर गया और जिन युवकों को अभी तक काबू में रखा

था, यदि उन्होंने अन्य मार्ग को ग्रहण करने का निश्चय किया तो मेरी आत्मा उनके कार्य को आशीर्वाद देगी।"

लालाजी को गम्भीर चोंटे लगी थीं। वे गम्भीर रूप से अस्वस्थ हो गए फिर भी वे 3–4 नवम्बर को नई दिल्ली की कांग्रेस–कमेटी की सभा में सम्मिलित हुए और लाहौर वापिस आकर 'दी पीपुल' में उसके विषय में एक लेख भी लिखा। शायद यह उनका अंतिम लेख था।

लालाजी की मृत्यु और शोक संवेदना

लालाजी का स्वास्थ्य दिनोंदिन गिरता गया। उन्हें सारे शरीर में पीड़ा अनुभव होने लगी। बुखार भी रहने लगा और 17 नवम्बर 1928 को प्रातः 7 बजे भारत माता के इस लाड़ले ने सदैव के लिए देशवासियों से विदा ले ली।

लालाजी की मृत्यु का यह समाचार जंगल में आग की तरह सम्पूर्ण देश में फैल गया। जिसने भी यह समाचार सुना, उसके नेत्र अश्रुपूरित हो गए। उनके शव को जब अंतिम संस्कार के लिए रावी नदी के तट पर ले जाया जा रहा था, लाखों आंसू बहाते लोग और अपार जन समूह मौजूद था। ठीक 5 बजे उन्हें अंतिम मुखाग्नि दी गई और भारत मां के लाड़ले का वह शरीर पंचतत्व में विलीन हो गया। पूरे देश में अपनी दुकानें, प्रतिष्ठान, संस्थाएं बंद रख आपकी मृत्यु के प्रति शोक प्रकट किया।

महात्मा गांधी ने उनकी मृत्यु पर संवेदना प्रकट करते हुए कहा– "लालाजी एक व्यक्ति नहीं, संस्था थे। उन्होंनें युवावस्था में ही देशभक्ति को अपना धर्म बना लिया था। उनके देश–प्रेम में संकीर्णता न थी। वे देश से इसलिए प्रेम करते थे, क्योंकि उन्हें विश्व के मानव मात्र से प्यार था।'

लालाजी की विविधोन्मुखी सेवाएं

लाला लाजपतराय पंजाब के ही नहीं, देश की महान हस्ती थे। पंजाब तो उन्हें अपना पिता कहता था। उनकी मृत्यु से जो स्थान पंजाब में रिक्त हुआ, वह आज तक भी भरा नहीं जा सका है।

वे एक कर्मठ देशभक्त, उत्साही समाज–सुधारक और महान शिक्षाविद् थे। उन्होंने देश की सेवा विविध रूपों में की। उन्होंने अपने भाषणों, लेखनी एवं जीवन द्वारा एक ऐसा वातावरण तैयार कर दिया,

जिससे एक दिन अंग्रेजों को भारत छोड़ कर जाना पड़ा। उनका अपनी भाषा, अपनी सभ्यता और संस्कृति से असीम लगाव था। वे किसी जाति–विशेष की विभूति न होकर सम्पूर्ण देश के थे और उन्होंने सच्चे मायनों में पंजाब–केसरी का नाम सार्थक किया था।

हिन्दुत्व के रक्षक – लालाजी

लालाजी हिन्दुत्व के प्रबल समर्थक थे। वे उन नेताओं में से नहीं थे, जो ऊपर से कहते कुछ और करते कुछ हैं। उनके मन और वाणी में अद्‌भुत साम्य था। उनकी स्वराज्य की धारणा मूल रूप से हिन्दुत्व की धारणा थी। उन्होंने कहा– "स्वराज्य तो सच्चे अर्थों में तभी होगा, जब हम अपने स्वरूप में स्थिर रह कर राजनैतिक स्वतंत्रता प्राप्त करेंगे। हमारा स्वरूप है– हमारा धर्म, हमारी संस्कृति और हमारी अपनी देशगत एवं जातिगत भावनाएं। उन्हें त्याग कर मिलने वाला स्वराज्य, स्वराज्य नहीं है। यदि किसी देश का बहुसंख्यक समाज दलित हो जाए तो वह देश ही दलित हो जाएगा। प्रजातंत्र की यह सीधी मांग है कि किसी देश या क्षेत्र का बहुसंख्यक समाज सिर उठा कर चलने की स्वतंत्रता रखे। अल्पसंख्यक की सहायता से विदेशी शासन इस देश के बहुसंख्यकों को दबा कर अपना प्रभुत्व रखना चाहता है। यही देश के लिए भारी अभिशाप है। जो कोई भी इस नीति का समर्थक या पोषक है, वह प्रजातंत्र का शत्रु है।"

काश! हमारे नेताओं ने लालाजी के इन शब्दों की ओर ध्यान दिया होता। लालाजी ने पराधीनता–काल में जो बात कही थी, वह स्वतंत्रता–प्राप्ति के बाद भी उतनी ही अकाट्य सत्य है। सरकार ने वोटों की राजनीति चलाते हुए देश के अल्पसंख्यकों व पिछड़े वर्गों के तुष्टीकरण एवं बहुसंख्यक हिन्दू–समाज की उपेक्षा करने तथा उसे आरक्षण के नाम पर जातियों–उपजातियों में विभक्त करने का जो षड्‌यंत्र रचा, उसके कारण स्वतंत्रता–प्राप्ति के पांच दशकों के बाद भी राष्ट्रीय एकता का स्वप्न खंड–खंड होकर बिखरा पड़ा है और देश साम्प्रदायिकता, जातिवाद, धर्म, सम्प्रदाय की लपटों में बुरी तरह से झुलस रहा है। लालाजी का विश्वास था कि जब तक हिन्दू–समाज जागृत, संगठित, बलशाली एवं स्वाभिमानी नहीं बन जाता, राष्ट्रोद्धार का काम कठिन है। इसलिए उन्होंने हिन्दू–संस्कृति या हिन्दू–समाज के बलिदान पर स्वराज्य–प्राप्ति को अधिक महत्व न दिया। वे हिन्दू–जाति को पद–दलित कर स्वराज्य या स्वतंत्रता की सड़क पर दौड़ना नहीं चाहते थे।

उन्होंने हिन्दू–महासभा को संगठित कर उसे राष्ट्रीय रूप दिया और उसके माध्यम से हिन्दू–जनता को सशक्त बनाने का प्रयास किया। उन्हें हिन्दू–समाज से इतना प्रेम था कि वे निमिष मात्र के लिए भी उसे त्याग नहीं सकते थे। जब–जब हिन्दू–समाज पर आपदा आई, लालाजी उसकी सहायता के लिए आगे बढ़े और अपने समाज के सच्चे सेवक सिद्ध हुए।

राष्ट्रीय आंदोलन में कार्य करने वाले अधिकांश कार्यकर्त्ता हिन्दू ही थे। प्रायः मुसलमान राष्ट्रीय आंदोलन से दूर रहते थे। ऐसी दशा में अंग्रेजों ने मुसलमानों को प्रश्रय देकर इस आंदोलन को कमजोर करने का षड्यंत्र रचा। उधर ईसाई, सरकार का प्रश्रय पा लाखों हिन्दुओं को ईसाई बनाने के कुचक्र में संलग्न थे। लालाजी से अंग्रेजों की यह चाल छिपी न रह सकी। उन्होंने हिन्दू–समाज को सुदृढ़ और शक्तिशाली बनाने का बीड़ा उठाया। महामना मदनमोहन मालवीय व स्वामी श्रद्धानंद उनके सहयोगी बने। इससे सम्पूर्ण देश का ध्यान उनके महान लक्ष्य की ओर केंद्रित हुआ, जिससे उपेक्षित हिन्दू–समाज में एक नई चेतना का समावेश हुआ। आप बिल्कुल नहीं चाहते थे कि बहुसंख्यक हिन्दुओं के अधिकारों को बलिदान कर मुसलमानों को विशेष प्रश्रय या वरीयता प्रदान की जाए।

आपने इसीलिये समाज में व्याप्त अस्पृश्यता और ऊंच–नीच की भावना का विरोध किया और हिन्दू–महासभा को साम्प्रदाायिकता से बचा कर उसे वृहद् रूप देने का प्रयास किया। उनके दलितोद्धार और शिक्षा–सम्बंधी कार्य भी इसी भावना से ओत–प्रोत थे।

इस हेतु आपने अनेक धार्मिक संस्थाएं खोलीं। आर्यसमाज के सदस्य बने, हिन्दू महासभा की स्थापना की, 1923 में शुद्धि–आंदोलन चलाया और 1925 में कलकत्ता में होने वाले हिन्दू–महासभा के अधिवेशन और 1928 की युक्त प्रांतीय हिन्दू–कांग्रेस, इटावा की अध्यक्षता की।

उनके प्रयत्नों का ही यह परिणाम था कि हिन्दू–महासभा के मंच पर वे सनातनधर्म, आर्यसमाजी, बौद्ध समाजी, जैन, सिक्ख सबको एक साथ बिठाने में सफल हुए।

उन्होंने देशवासियों का ध्यान इस ओर आकर्षित किया कि हिन्दू हों या मुसलमान, सब हिन्दुस्तान राष्ट्र के निवासी हैं और उनकी उपयुक्त संज्ञा कोई हो सकती है तो वह हिन्दू ही है। उनका मत था कि हिन्दू और मुसलमान शब्द केवल धार्मिक विभिन्नता को प्रकट करते हैं, अन्यथा इस देश के सभी निवासी चाहे वे हिन्दू हों या मुसलमान, एक राष्ट्र से सम्बंध

रखते हैं। उनकी राष्ट्रीयता और लक्ष्य एक है। वे एक ही सरकार की प्रजा हैं और उनके सुख–दुःख समान हैं। अतः राष्ट्र की प्रगति के लिए अपेक्षित है कि भारत में बसने वाले इन सभी वर्गों को हिन्दू नाम से पुकारा जाए, जिसका अर्थ है– हिन्दुस्तान के वासी। उनके अनुसार देश के सभी निवासी चाहे वे किसी भी धर्म या सम्प्रदाय के हों, उनके हितों की तुष्टि के लिए बहुसंख्यक हिन्दू–समाज की उपेक्षा अथवा उसके हितों पर कुठाराघात कदापि उचित नहीं है।

लाला लाजपतराय ने इसी व्यापक अर्थ में हिन्दू–समाज को सुदृढ़ व शक्तिशाली बनाने का प्रयत्न किया। जब उन्होंने देखा कि ब्रिटिश सरकार और कतिपय मुसलमान हिन्दुओं की वर्ण–व्यवस्था का लाभ उठा उन्हें साम्प्रदायिक निर्वाचन का प्रलोभन दे खण्ड–खण्ड करना चाहते हैं तो उन्होंने जाति–धर्म के नाम पर पृथक् निर्वाचन का विरोध किया।

फिर भी आप संकीर्ण साम्प्रदायिकता की गंध से दूर थे। सभी धर्मों, जातियों, सम्प्रदायों के प्रति उनका दृष्टिकोण उदार था। उनका विश्वास था कि यदि कोई धर्म अपने उत्थान के लिये प्रयत्न करता है तो बुरा नहीं है। प्रत्येक वर्ग को अपने हितों की रक्षा करने का अधिकार है, बशर्ते वे गैर–हिन्दुस्तानियों के साथ अपवित्र गठजोड़ कर के राष्ट्र को हानि न पहुंचाएं। इसलिए उनकी दृष्टि में हिन्दू, मुसलमान, सिक्ख, ईसाई, पारसी सब एक समान थे। वे सभी को समान रूप से महत्त्व देते थे और सभी के अभ्युदय एवं कल्याण की कामना करते थे। उनकी प्रबल इच्छा थी कि हिन्दू–समाज की सभी श्रेणियां और वर्ग परस्पर मिल–जुल कर रहें और राष्ट्रीयता के भाव को परिपुष्ट करें तथा मानव–जाति के कल्याण के लिए कार्य करें।

हिन्दू–हितों की इसी हिमायत के कारण कुछ मुसलमानों या उनसे असंतुष्ट लोगों ने उनके विरोध में वातावरण बनाने का प्रयास किया किन्तु लालाजी अपने लक्ष्य से टस से मस न हुए। वे सच्चे राष्ट्रवादी थे और अंतिम समय तक उनकी प्रत्येक सांस से राष्ट्र–हित की ध्वनि निकलती रही।

काश! हमारे नेताओं ने लालाजी के इन विचारों को समझा होता। यदि उन पर थोड़ा भी ध्यान दिया होता तो न तो देश को विभाजन की विभीषिका सहनी पड़ती और न ही वर्तमान विषम परिस्थितियों का सामना करना पड़ता।

दलितों के हितैषी एवं अछूतों के उद्धारक

लालाजी समाज के दलितों, पिछड़ों एवं अस्पृश्यों के महान शुभचिंतक और परम हितैषी थे। 1900 से पहले जब महात्मा गांधी और कांग्रेस का ध्यान इस समस्या की ओर गया तक न था, आपने इस दिशा में कार्य करना प्रारम्भ कर दिया था। स्यालकोट के आसपास मेघ आदि दलित जातियों के सुधार के लिए आपने अथक प्रयत्न किए। उन्होंने उन्हें शिक्षित बनाने के लिए अनेक पाठशालाएं खोलीं और उनमें जागृति लाने के लिए अभूतपूर्व प्रयास किए। 1920 में अमेरिका से लौटने पर आपने सर्वेंट्स ऑफ पीपुल सोसायटी की स्थापना की, जो आज भी समाज के दलितों के उद्धार में संलग्न है।

लालाजी जब अस्वस्थ चल रहे थे और उनके स्वास्थ्य को लेकर सभी चिंतित थे, तभी उन्हें मालूम हुआ कि आगाखां द्वारा प्रदत्त आर्थिक सहायता से अनेक अछूतों को मुसलमान बनाया जा रहा है तो उनका हृदय वेदना से भर उठा। वे सोचने लगे कि क्या अछूतों का कोई नहीं है, जिससे पैसों के बल पर धर्म–परिवर्तन करने के लिए बाध्य किया जा रहा है। नहीं, ऐसा नहीं होने देंगे। उनकी आत्मा ने पुकारा और वे तत्काल अछूतोद्धार के कार्य में जुट पड़े। उन्होंने विविध पत्र–पत्रिकाओं में लेख लिखे, जगह–जगह सार्वजनिक सभाओं का आयोजन किया और उनकी प्रेरणा–स्वरूप समूह के समूह अछूतोद्धार के लिए उमड़ पड़े।

उन्होंने अछूतोद्धार के लिए एक अखिल भारतीय अछूतोद्धार समिति की स्थापना की। स्वयं उसके अध्यक्ष बने तथा दिल्ली के सब्जी बाम में उसका कार्यालय खोला। लोकसेवा मंडल के अधिकांश सदस्यों को उनकी सुविधानुसार दिल्ली, पंजाब, उत्तर–प्रदेश के विभिन्न जिलों में इस कार्य के लिए भेजा। शाहदरा के पास उन्होंने एक बस्ती बसाई तथा छोटे–छोटे घरेलू उद्योग–धंधों की स्थापना द्वारा उनकी सामाजिक एवं आर्थिक दशा को सुधारने का प्रयत्न किया।

लालाजी ने देशवासियों का ध्यान इस महत्वपूर्ण समस्या की और दिलाते हुए कहा– –"यदि हम लोग अपने इन भाइयों को मानवीय अधिकारों से वंचित रखेंगे तो दूसरी जातियां उन्हें सहर्ष अपनायेंगी। अतः उनकी उन्नति में बाधा नहीं खड़ी करनी चाहिये। इसी से हमारे देश की उन्नति होगी और जातीय गौरव बढ़ेगा।" आपका कथन था– –"हिन्दू यदि सामाजिक दृष्टि से अपनी स्थिति सुधार लें तो फिर किसी जाति की ओर से उन्हें खतरा न रहेगा।"

यह उनके प्रयत्नों का ही परिणाम था कि कांग्रेस ने भी अछूतोद्धार को अपने रचनात्मक कार्यों का एक अंग बनाया और देश के कोने–कोने में हरिजन–सेवक–सभाओं की स्थापना होनी प्रारम्भ हुई। कांग्रेस के इन रचनात्मक कार्यों को लालाजी का पूरा समर्थन व सहयोग प्राप्त था।

आपकी लगन के फलस्वरूप 1912 में गुरूकुल कांगड़ी के उत्सव पर समाज के पिछड़े वर्गों एवं हरिजनों के उद्धार के लिए एक विशेष सम्मेलन आमंत्रित किया गया, जिसमें उनकी शिक्षा एवं उन्नति के लिए अनेक योजनाएं बनाई गईं। श्री जुगलकिशोर बिड़ला उन्हें इस कार्य के लिए लम्बे समय तक 5000/– प्रति माह भेजते रहे थे।

इसी प्रकार जब अकाल एवं भूकम्पों ने लाखों बालकों को अनाथ बना दिया और उन की विवशता का लाभ उठा ईसाई मिशनरियां उन्हें अपने धर्म में दीक्षित करने लगीं तो लालाजी ने अनाथालय खोल उनकी सहायता की और उन्हें विधर्मी होने से बचाया।

विद्यार्थी–जीवन से ही लालाजी आर्यसमाज के अनुयायी थे। अछूतोद्धार आर्यसमाज का एक अंग रहा है। आपने उसके माध्यम से इस आंदोलन को सक्रिय सहयोग प्रदान किया।

लालाजी की कथनी और करनी में कोई अंतर न था। वे जो कुछ कहते, उसे कर दिखाते थे। उन्होंने आर्यसमाजी विद्यालयों तथा गुरूकुलों में बिना किसी भेदभाव के हरिजनों को पढ़ाने का प्रबंध किया। अछूतों के लिए जनसेवक–समिति का गठन किया। अछूतों की बस्ती के लिए शाहदरा के पास जमीन खरीदी और उनमें शिक्षा प्रचार के लिए स्वयं 4000/– दिए। वे स्वयं अछूतों के घर गए, उनके हाथ का भोजन कर सद्भाव का परिचय दिया और नवीन आदर्श प्रस्तुत किए। उन्होंने अपनी सम्पूर्ण शक्ति अस्पृश्यता को दूर करने तथा कमजोर वर्गों के कल्याण के लिए समर्पित कर दी। इससे देश–विदेश में अछूतों के पक्ष में जबरदस्त वातावरण का निर्माण संभव हो सका।

समाज–सेवा के क्षेत्र में लाला जी

समाज एवं मानवमात्र की सेवा के लिए तो जैसे लालाजी का जन्म ही हुआ था। उन्हें दीन–दुखियों की सेवा में जितना आनन्द आता था, उतना शायद देवी–देवताओं की अर्चना में भी नहीं आता था।

अनाथों, विधवाओं, विद्यार्थियों, दीन–दुखियों, अछूतों सबके लिए

लालाजी के हृदय में जैसे प्रेम और सहानुभूति की गंगा प्रवाहित होती थी, वह भी बिना किसी भेदभाव और इस विचार के कि वे लोग किस जाति या समुदाय से सम्बंध रखते हैं। वे सबके कष्टों को दूर करने के लिए प्रयत्नशील रहते थे। वे निर्बलों के बल, दीनों की सम्पत्ति और दुखियों के आश्रय थे। दुर्भिक्ष हो या भूकम्प, प्लेग हो या अन्य कोई महामारी हो, जब भी कोई आपत्ति देशवासियों पर आई, तो आप उनकी सहायता में सबसे आगे मिलते।

सन् 1897 में भारतवर्ष पर महामारी, अनावृष्टि और दुर्भिक्ष का भयंकर प्रकोप पड़ा। देश में भयंकर हाहाकार मच गया। लोगों का करूण क्रंदन इतना अधिक था कि निर्जीव पत्थरों के भी हृदय पिघल जायें किन्तु पाशविक सरकार ने उनकी ओर कोई ध्यान नहीं दिया। ऐसे समय में लालाजी ने हुंकार की– "जब तक मैं जीवित हूं, उन्हें मृत्यु का ग्रास नहीं बनने दूंगा। चाहे मुझे कितने भी कष्ट उठानें पड़े।" और वे अपने सभी संगी–साथियों को ले अकाल–पीड़ितों की सहायतार्थ चल पड़े।

पंजाब के कुख्यात कांगड़ा भूकम्प के समय लालाजी ने जो सेवाएं कीं, वे अवर्णनीय हैं। स्वयं, सेवक बन उन्होंने अपने पुरूषार्थ से अनेक भूकम्प–पीड़ितों को मलवे और टूटे–फूटे मकानों से निकालने का कार्य किया। 1907 के मध्यप्रदेश तथा उड़ीसा प्रान्त के दुष्काल में भी आपने अभूतपूर्व सेवाएं प्रदान कीं।

सम्वत् 1956 का भीषण छपनिया अकाल हो या उत्तरी भारत का दुष्काल, जब लोग एक–एक दाने के लिए तरस रहे थे, हिन्दू स्त्रियां, अनाथ बच्चे दुखी हो अपना धर्म तक बेचने के लिए विवश हो रहे थे, ऐसे समय में लाला लाजपतराय ने उनके प्रति प्रगाढ़ आत्मीयता प्रदर्शित की। उन्होंने अपनी अच्छी खासी चलती वकालत को तिलांजली दे दी क्योंकि वह उनके सार्वजनिक कार्यों में बाधा डालती थी। उनके प्रयत्नों के फलस्वरूप आर्य–अनाथालय फिरोजपुर, हिन्दू–अनाथाश्रम लाहौर, मेरठ अनाथालय आदि की स्थापना हुई, जहां हजारों की संख्या में लोगों ने पीड़ित मानवों की सेवा में अपने आपको अर्पित कर दिया। अकेले राजपूताना के अकाल में उन्होंने 7000 अकाल–पीड़ितों को ईसाइयों के चंगुल से बचाया।

जब फिरोजपुर का अनाथालय अनाथों से भर गया और स्थान का अभाव प्रतीत हुआ तो आपने अपनी बहिन और माताजी की स्मृति में कई कमरे बनवा दिये, जहां–जहां जब–जब, राहत कार्यों की जरूरत

पड़ी, लाला लाजपतराय विद्यमान थे।

अनाथ बच्चों तथा रूग्ण महिलाओं की चिकित्सा के लिए आपने गुलाबदेवी अस्पताल खोला और अपनी कमाई का बहुत बड़ा भाग लोकोपकारी कार्यों में लगा दिया।

भारतीय श्रमिकों के करूणक्रंदन को प्रकट करने के लिए आपने उनका प्रतिनिधित्व अन्तरराष्ट्रीय संगठन में किया। 1907 के मध्यप्रदेश तथा उड़ीसा के दु काल में आपने स्वयं सेवक दल का गठन किया और उसके माध्यम से उल्लेखनीय सेवाएं की। इस प्रकार लालाजी ने समाज–सेवा के क्षेत्र में नवीन प्रतिमान स्थापित किए।

लालाजी और महिलाओं की प्रगति

लालाजी महिलाओं के अधिकारों के भी समर्थक थे। उनके प्रति उनका दृष्टिकोण समयानुकूल एवं प्रगतिशील था। वे चाहते थे कि भारतीय महिलाएं अपनी लज्जा और मर्यादा के साथ बच्चों के प्रति कर्त्तव्य भावना का पालन करें किन्तु उसके साथ वह यह भी चाहते थे कि वे अपने अधिकारों के प्रति सचेष्ट रहे और उनकी मांग करना सीखें उन्होंने मानव–मात्र का आह्वान किया कि वे महिलाओं को शारीरिक एवं मानसिक विकास का पूर्ण अवसर प्रदान करें।

लालाजी और युवाशक्ति

लालाजी को देश की युवाशक्ति से प्रेम था। अपनी उदारता, दया, सहानुभूति और निःस्वार्थ सेवाभाव के कारण युवकों के भी वे हर–दिल अजीज बन गए थे। युवकों को वे शाक्ति का स्रोत समझते थे और उनकी और आशाभरी दृष्टि से देखते थे। वे चाहते थे कि देश का युवावर्ग रचनात्मक कार्यों में अपनी शक्ति का प्रयोग कर जवानी को सार्थक करे। जिस किसी ने भी देश के नवयुवकों या विद्यार्थियों को राजनीति में भाग लेने से रोका, लालाजी ने उसकी खबर ली। वे कहते थे कि मैं उन लोगों में नहीं हूं जो कि विद्यार्थियों, विशेष कर विश्वविद्यालयी छात्रों को राजनीति में भाग लेने से रोकते हैं, मेरे विचार में ऐसा करना नितांत मूर्खतापूर्ण और अनुचित है, ऐसा कहने वाले लोग पथभ्रष्ट हैं। इसलिए उन्होंने अग्रवंशीय युवकों को भी खुल कर राजनीतिक एवं सामाजिक कार्यों में भाग लेने का आह्वान किया और छात्रावस्था में ही राजनीति में कूद उन्होंने आदर्श प्रस्तुत किया।

लालाजी का शिक्षा–प्रेम

लाला लाजपतराय राजनैतिक नेता, महान समाज–सुधारक होने के साथ–साथ शिक्षा–प्रेमी भी थे। उन्होंने 1911 में पंजाब में शिक्षा–लीग की स्थापना की और अछूत जातियों, निर्धन वर्ग एवं सर्वसाधारण में शिक्षा–प्रचार के लिए उसके माध्यम से कई विद्यालय खोले। उन्होंने अपनी जन्मभूमि जगरांव में अपने पिता के नाम पर राधाकिशन हाई स्कूल की स्थापना की। लाहौर में उन्होंने डी.ए.वी. कालेज की स्थापना की और आर्यसमाज के माध्यम से उसका सफलता–पूर्वक संचालन किया। महर्षि दयानन्द के आदर्शों को क्रियान्वित करने वाला यह प्रथम अशासकीय कालेज था, जिसके संचालन के लिए किसी प्रकार का राजकीय अनुदान नहीं लिया गया। इसके संचालन के लिए आपने वकालत की सम्पूर्ण कमाई अर्पित कर दी। उन्होंने अनेक शिक्षा–संस्थाओं की आर्थिक सहायता की और उन्हें सम्बल प्रदान किया।

लालाजी ने आजीविका के रूप में कानून को व्यवसाय के रूप में अपनाया, किन्तु हृदय से वे एक महान शिक्षाविद् थे। उनका यह विश्वास था कि भारत की उन्नति एवं प्रगति के लिए शिक्षा अनिवार्य है। साथ ही उनका मत था कि यदि भारत विश्व के देशों में अपना समुचित स्थान बनाना चाहता है, तो उसे विश्व की आधुनिक भाषाओं का भी ज्ञान प्राप्त करना और सीखना होगा। राष्ट्रभाषा हिन्दी के समर्थक होते हुए भी वे अंग्रेजी के विरोधी न थे। उनका विचार था कि इससे भारत विश्व के साथ कदम से कदम मिला कर चल सकेगा।

लालाजी शिक्षा के प्राचीन स्वरूप के कायल होते हुए भी वे उसके आदर्शीकरण के विरोधी थे। उनका इस सम्बंध में मत यथार्थ पर आधारित था और उदार था। उन्होंने कहा– "न तो सब पुरातन चीजें बुरी हैं न ही पूर्ण आदर्श और श्रेष्ठ।" इसलिए उन्होंने इस बात पर बल दिया कि शिक्षा की पुरातन पद्धति का पुनरूत्थान करने के साथ–साथ हमें उसे आधुनिक समय की आवश्यकताओं के अनुरूप ही बनाना चाहिये।

लालाजी बच्चों के शारीरिक विकास के लिए स्वास्थ्य–सम्बंधी शिक्षा पर बहुत बल देते थे। इसमें बच्चों को खिलाना–पिलाना सम्मिलित था। उनकी बलवती इच्छा थी कि पाठ्यक्रम के अलग विषयों की तरह बच्चों को राष्ट्रीयता तथा देशभक्ति के भावों की भी शिक्षा दी जानी चाहिए, जिससे वे देश की गौरव–गरिमा और वैविध्य–पूर्ण स्वरूप से परिचित हों

और उसका महत्त्व समझ सकें। लालाजी प्राचीन समय के गुरू–शिष्य–सम्बंधों के पक्षधर थे। उनके विचार में उनमें मानवीय तत्त्व का समावेश होने से जिस प्रगाढता का समावेश था, उसका आधुनिक शिक्षा–पद्धति में अभाव है। इस प्रकार लाला लाजपतराय का शिक्षा–सम्बंधी दृष्टिकोण अपने समय में कहीं अधिक आगे था।

लालाजी और हिन्दी

लालाजी में बचपन से ही राष्ट्रीयता की भावनाएं हिलोरें लेने लगी थीं। वे हिन्दीभाषा के कट्टर समर्थक थे। आपके पिताजी अरबी और फारसी के विद्वान थे और उनका गहरा प्रभाव आप पर पड़ा था। साथ ही हिन्दी और संस्कृत का प्रभाव भी बढ़ रहा था। आप असमंजस में पड़ गये कि देश की भाषा अरबी–फारसी हो या हिन्दी–संस्कृत। शीघ्र ही उन्होंने अनुभव कर लिया कि हिन्दुस्तानी होने के नाते उनकी भाषा हिन्दी ही हो सकती है। उन्हें इस बात का बोध हो गया कि जिसकी भाषा विदेशी है, उसके संस्कार कभी इस देश के अनुकूल नहीं हो सकते। अतः भारत–माता की बंदी आत्मा को यदि मुक्त कराना है, तो राष्ट्रभाषा ही राष्ट्रीय भावों को उत्पन्न कर विश्वात्मा के साथ एकाकार कर सकती है।

अतः उन्होंने नारा लगाया– ''हिन्दुओ! हिन्दी पढ़ो, हिन्दुओं, संस्कृत पढ़ो, हिन्दुओं अरबी और फारसी का त्याग करो। उन्होंने राष्ट्रभाषा हिन्दी के महत्त्व को उसी समय अनुभव कर लिया था। उनका कथन है– ''भविष्य में हिन्दी ही भारत की राष्ट्रभाषा बनने वाली है और राष्ट्रभाषा ही राष्ट्र–आत्मा की वाणी को अभिव्यक्त करने का सर्वोत्कृष्ट माध्यम है। यही एक ऐसा साधन है, जिसके सहारे किसी राष्ट्र के नागरिकों को सफलता–पूर्वक राष्ट्रीय एकता के सूत्र में बांधा जा सकता है। उसका सीधा सम्बंध जनता के जीवन से नहीं, आत्मा से होता है। राष्ट्रभाषा का अपमान राष्ट्रीय एकता का अपमान है और सच कहा जाए तो अपने भाग्यविधाता का अपमान है। राष्ट्रभाषा को सम्मान देना निःसंदेह राष्ट्रमाता जननी को सम्मान देना है। उस जननी को जो राष्ट्रीय विचारों का पवित्र दूध पिला हमें विश्व–समन्वय का प्रतीक बनाती है।''

इन्हीं विचारों के फलस्वरूप लाला लाजपतराय ने आर्यसमाज के माध्यम से हिन्दी और संस्कृत भाषाओं के प्रचार–प्रसार का जोरदार प्रयत्न किया। फलस्वरूप शिक्षा के माध्यम रूप में हिन्दी को स्वीकृति

मिली। आर्यसमाज ने इस दिशा में ऐतिहासिक कार्य किया और हिन्दी राष्ट्रभाषा के रूप में प्रतिष्ठापित करने में उनकी महत्वपूर्ण भूमिका रही। उन द्वारा स्थापित हिन्दू–प्रारम्भिक शिक्षा–लीग ने भी जोरदार मांग की कि हिन्दी को प्राथमिक शिक्षा का माध्यम घोषित किया जाए। उर्दूभाषी पंजाब में उनकी इस मांग का विरोध हुआ लेकिन लीग ने विरोध की परवाह न करते हुए हिन्दी–प्रचार आंदोलन को चालू रखा। अदालतों में भी हिन्दी के प्रयोग पर बल दिया गया। वास्तव में लाला लाजपतराय हिन्दी के दृढ़ स्तम्भ थे। उनके इसी हिन्दी प्रेम की प्रशंसा करते हुए लाहोर के प्रमुख पत्र 'आब्जर्वर' ने लिखा था– "इससे राष्ट्रीय एकता को प्रोत्साहन मिलेगा।"

लालाजी का लेखन–कार्य और पत्रकारिता

लालाजी शिक्षाप्रेमी होने के साथ–साथ स्वयं एक अच्छे शिक्षक, लेखक, साहित्यकार, और पत्रकार भी थे। उनकी लेखनी एवं वाणी में जादू का सा असर था। वे हिन्दी, उर्दू, अंग्रेजी आदि अनेक भाषाओं के ज्ञाता थे और उन्होंने जो ग्रंथ लिखे हैं, वे साहित्य की अमूल्य निधि हैं। उन्होंने अपने लेखों एवं रचनाओं द्वारा भारतीय जनमानस को स्वतंत्रता–प्राप्ति के लिए झकझोर कर रख दिया। उनके भाषणों एवं लेखों में इतनी शक्ति होती थी कि उन्हें सुनने या पढ़ने मात्र से शरीर में विद्युत–तरंगों की भांति उत्साह की लहर सी दौड़ पड़ती थी। आपनी वाक्–चातुरी द्वारा कायरों को वीर, शिथिलों को सचेष्ट, उदासीनों को कर्मठ तथा निराशावादियों में आशा का संचार कर देना उनकी सामान्य बात थी। उन्हें वक्तृत्व कला वरदान के रूप में प्राप्त हुई थी। अपनी ओजपूर्ण वक्तृता से उन्होंने कांग्रेस के अनेक अधिवेशनों में चार चांद लगा दिए थे।

आप कलम को अपनी जायदाद मानते थे और साहित्य को देश–सेवा का माध्यम। आपने विभिन्न जीवनियां लिख कर समाज में देशप्रेम की भावना उत्पन्न करने का स्तुत्य प्रयास किया, जिनमें जोसेफ मेजिनी, गेरीवाल्डी, शिवाजी, दयानंद, भगवान कृष्ण, बंदा बैरागी, स्वामी श्रद्धानंद, गुरूदत्त विद्यार्थी आदि की जीवनियां प्रमुख हैं।

आपने अमेरिका जाकर भी अनके पुस्तकें लिखीं, जिनमें यंग इण्डिया, आर्यसमाज और भारत का राजनीतिक भविष्य महत्त्वपूर्ण हैं। आपकी सर्वोत्तम पुस्तक 'अनहैप्पी इण्डिया' (दुःखी भारत) है, जो मिसमेयो की मदर इण्डिया के उत्तर में लिखी गई थी। आपने जापान की विस्मय–जनक उन्नति, भगवद् गीता पर अंग्रेजी काव्य, वर्तमान स्थिति,

ब्रह्मा का वृत्तांत, अमेरिका की संयुक्त रियासतें आदि अनेक पुस्तकें भी लिखीं। उर्दू में तवारीखे हिन्दी नामक पुस्तक का लेखन कार्य किया। आप ने कृष्ण की शिक्षाओं पर भी एक पुस्तक लिखी। आपकी 'भारत–एक श्मशानभूमि' पुस्तका का तो विश्व की अनेक भाषाओं में अनुवाद हुआ।

आप साहित्य–सेवा को देश–सेवा का अंग मानते थे, क्योंकि देश और समाज को उन्नत बनाने के लिए उत्कृष्ट साहित्य और पूर्वजों के ऐतिहासिक ज्ञान की आवश्यकता है। उनका साहित्यिक ज्ञान उच्चकोटि का था। वह बहुत कुछ स्वाध्याय तथा मनन–योग्य सामग्री प्रस्तुत करता है। आपने कई धार्मिक एवं सामाजिक पत्रों का सम्पादन किया। उर्दू में दैनिक वंदेमातरम् और अंग्रेजी में साप्ताहिक पीपुल पत्र निकाले, जो आपके देहावसान के बाद भी लम्बे समय तक प्रकाशित होते रहे। आपने सन् 1916 में प्रवासी भारतीयों को संगठित करने के लिए इण्डियन होम रूल लीग संस्था बनाई और 'यंग इण्डिया' नामक पत्र का प्रकाशन किया। इस पत्र ने पर्याप्त लोकप्रियता प्राप्त की। भारत के राजनैतिक नेताओं में संभवतः लालाजी ने सर्वाधिक साहित्य का सृजन किया। वे उच्च कोटि के लेखक और कलम के धनी थे। उनका साहित्य ज्ञान की अमूल्य निधि है, जिस पर हम गौरव का अनुभव कर सकते हैं।

नींव के पत्थर – लालाजी

लालाजी ने देश की अनुपम सेवाएं कीं किन्तु किसी प्रकार के पद और ख्याति की चाह बिल्कुल न रही। वे ऐसा नींव का पत्थर बनना चाहते थे, जिस पर सुदृढ भव्य भारत की नींव रखी जाए। उन्होंने लोकसेवा–मण्डल की दीक्षा देते हुए कहा था कि– "ताजमहल में दो प्रकार के पत्थर लगे हैं– एक बढ़िया संगमरमर, जिससे महराब और गुम्बद बने है। इनसे ही सुंदर जालियां काटी गई हैं, मीनाकारी और पच्चीकारी की गई है, रंग–बिरंगे बेल–बूंटे भी उन्हीं से बनाये गये हैं। दुनिया उनको देखती है। मुग्ध हो जाती है और प्रशंसा करती है। दूसरे वे पत्थर हैं, जो टेढ़े–मेढ़े–बेढंगे हैं और नींव में दबे पड़े हैं। उनकी किस्मत में केवल अंधकार और बुनियाद की घुटन है। उनकी कोई प्रंशसा नहीं करता, लेकिन उन्हीं नींव के पत्थरों पर ताजमहल की विश्वविख्यात इमारत खड़ी है। मैं चाहता हूं कि लोकसेवक–मण्डल के सदस्य नींव के पत्थर बनें, वे सस्ते आत्म–प्रदर्शन से अपने को बचाये रखें और ठोस कार्य की ओर अधिक ध्यान दें।'

लालाजी ने देश की भलाई में अपने व्यक्तित्व को विलीन कर दिया था। वे देश को अपने से कभी अलग नहीं समझते थे। उनके इसी अभेद के कारण सम्पूर्ण देश उनके सुख में अपना सुख और उनके दुःख में अपना दुख समझता था। वे हठवादी भी नहीं थे। राष्ट्र के व्यापक हित में दूसरों की उचित राय को स्वीकार कर लेना उनके स्वभाव की विशेषता थी। उनके जीवन में अनेक ऐसे क्षण आये, जब सैद्धान्तिक दृष्टि से सहमत न होते हुए भी जन–आंदोलनों को उन्होंने पूरा सहयोग प्रदान किया।

लालाजी चाहे देश में रहे या विदेश में, सदैव उन्हें देश की चिंता लगी रही। उनका सम्पूर्ण जीवन मानों देश के लिए समर्पित हो गया था। उसी के लिए पढ़ना, उसी के लिए लिखना, उसी के लिए विदेशियों से मिलना और आवश्यकता पड़े तो बड़े से बड़ा कष्ट सहना और जेल जाने के लिए तत्पर रहना जैसे उनका स्वभाव बन गया था। भारत की भलाई के लिए उन्होंने घर–बार–छोड़ विदेशों में भी रहना स्वीकार किया। लालाजी जितने समय देश से बाहर रहे और यातनाएं सहीं, संभवतः उनकी जोड़ का अन्य ही कोई नेता हो।

सार्वजनिक जीवन में शुचिता एवं पवित्रता के पक्षधर – लालाजी

लालाजी सार्वजनिक जीवन में शुचिता एवं ईमानदारी के प्रबल समर्थक थे। उन्होंने कांग्रेस और विभिन्न संस्थाओं के लिए देश–विदेश में पर्याप्त राशि एकत्र की किन्तु अपने निर्वाह के लिए उन्होंने सार्वजनिक धन से एक पैसा तक लेना पाप समझा, प्रत्युत अपना घर–बार–परिवार सब कुछ राष्ट्र–सेवा में अर्पित कर दिया। जनता द्वारा सौंपे गये धन को वे देश की अमानत समझते थे और उसका पूरा उपयोग कड़ाई से उसी कार्य के लिए करते थे, जिस निमित्त वह धन उन्हें प्राप्त होता था।

उन्होंने अपनी वसीयत बार–बार लिखी। उसमें अमानत के रूप में पड़े इस धन का पूरा–पूरा विवरण दिया ताकि यदि किसी कारण वश उनकी मृत्यु हो जाए, तो उस अमानत धन में कोई गड़बड़ न हो। वे उस धन के बारे में मदनमोहन मालवीय और अन्य प्रमुख विभूतियों को भी अवगत कराते रहते थे ताकि उनकी पवित्रता पर कोई संदेह न उठे। सार्वजनिक धन के प्रति उनकी पवित्रता का इससे बढ़ कर क्या प्रमाण होगा कि अमेरिका से लौटने के बाद उन्होंने सम्पूर्ण हिसाब का विवरण महात्मा गांधी को भिजवा दिया था।

इस हिसाब को भिजवाते समय उन्होंने स्पष्ट शब्दों में लिखा था कि विदेश में अपने निजी खर्च के लिए उन्होंने अपना ही धन खर्च किया। इसमें से कुछ राशि उन्हें उनके पुत्र द्वारा तो कुछ राशि पुस्तकों के पारिश्रमिक द्वारा प्राप्त हुई। उन्होंने अपने ऊपर 100 डालर प्रमिमास से अधिक खर्च कभी नहीं किया, प्रत्युत अपनी अर्जित आय का अधिकांश भाग भी सार्वजनिक कार्यों में खर्च करते रहे हैं। कठोर परिश्रम, ईमानदारी और मितव्ययता से धनार्जन और खुले हाथों से सार्वजनिक कामों में उसका उपयोग– अग्रवालों के इस जन्मजात संस्कार को लालाजी ने वास्तव में व्यावहारिक रूप में परिणत कर पूरे समाज को गौरवान्वित किया।

संस्थाओं के संस्थापक – लालाजी

लालाजी ने अपने जीवन में अनेक संस्थाओं की स्थापना की। 1911 में पंजाब शिक्षासंघ की स्थापना की। 1912 में जगरांव में अपने पूज्य पिताश्री की स्मृति में राधाकिशन हाई स्कूल की स्थापना की। 1917 में इण्डियन होम रूल लीग की स्थापना में उनका विशेष योगदान रहा। 1919 में भारतीय सूचना ब्यूरो तथा 1921 लोकसेवक–मण्डल की स्थापना की, जिसने बड़ी तेजी से देश के लिए समर्पित कार्यकर्त्ता तैयार किए। 1923 में उन्होंने अपनी सम्पूर्ण सम्पत्ति दान देकर 'सर्वेण्ट्स ऑफ इण्डियन पीपुल सोसायटी', की की स्थापना की और उसे अपना ढाई लाख रूपये का लाजपतराय–भवन समर्पित कर दिया। उन्होंने क्षय रोगियों की चिकित्सार्थ अपनी माताजी के नाम पर 'गुलाब देवी धर्मार्थ औषधालय' की स्थापना की। अनाथों की भलाई के लिए अपनी बहिन और माताजी की स्मृति में फिरोजपुर के अनाथाश्रम में कमरे बनाये। आपने 50000/–रु. की पुस्तकें दान कर द्वारिकादास लाइब्रेरी की स्थापना की। इतना ही नहीं, विदेशों में स्थित भारतीयों के सहयोग के लिए भी आपने बहुत कुछ किया। दक्षिण अफ्रीका के आंदोलनकारियों के सहायतार्थ भारत से राशि भिजवाई।

आपके प्रयत्नों से हिसार में संस्कृत कालेज के छात्रों को अध्ययन आप कराते रहे। आर्यसमाज के संचालन में भी उनका विशेष योगदान रहा। उन्होंने अपने जीवन में जो कुछ अर्जित किया, उसका अधिकांश भाग लोकोपकारी संस्थाओं में अर्पित कर दिया। यदि आज के हिसाब से उसका मूल्यांकन किया जाए, तो यह राशि लाखों में बैठती है।

लालाजी की उदारता एवं दानप्रियता

सुप्रसिद्ध अग्रलेखक एवं इतिहासकार त्रिलोक गोयल ने अपने एक लेख में लालाजी की उदारता एवं दानप्रियता का उल्लेख करते हुए कहा है कि सामान्यतया बनियों के लिए लाला शब्द का प्रयोग होता है, जिसका अर्थ है 'ला, ला'। अर्थात् लेना ही वणिक् वृत्ति है किन्तु लालाजी की प्रवृत्ति इसके विपरीत थी। उन्होंने अपने जीवन में किसी से लिया कुछ नहीं, देश, धर्म, जाति, समाज के रक्षार्थ सब कुछ दिया ही दिया। उन्होंने अपने जीवन में किसी से ना नहीं कही–

लाला तो कहाए, पर ला ला सों राख्यो न काज।
ना–ना कह्यो, दे दे हरि पीर पर–क्लेश की।

धन किसे अच्छा नहीं लगता और कौन प्राप्त होने वाले धन को लालसा–भरी जवानी में त्याग सकता है, किसे इस बात की चिंता होती है, उसके कठोर परिश्रम द्वारा उपार्जित कमाई का प्रयोग दूसरों की भलाई के कार्यों में हो, किन्तु लाला लाजपतराय में जन्मजात कुछ ऐसे संस्कार थे, जिनके कारण उन्होंने अपने जीवन में धन को कोई विशेष महत्व नहीं दिया और अपने कठोर परिश्रम एवं लग्न द्वारा जो कुछ अर्जित किया, उसे समाज तथा राष्ट्र के हितार्थ अर्पित कर दिया।

जब लालाजी वकील बने और उनकी कमाई घर पर आने लगी तो उनके पिता मुंशी राधाकिशन बड़े ही प्रसन्न हुए और उन्होंने निश्चित अवधि से पूर्व ही यह सोच कर अवकाश प्राप्त कर लिया कि अब तो पुत्र की वकालत की कमाई से उनके वारे–न्यारे हो जाएंगे, जिन्दगी के दिन आराम से कटेंगे किन्तु लालाजी तो जैसे किसी दूसरी मिट्टी के बने थे। बचपन से ही उनमें धन कमाने की अपेक्षा समाज एवं राष्ट्र सेवा के संस्कार प्रबल थे। वकालत तो परिवार चलाने के लिए एक माध्यम मात्र थी। इसलिए जब उन्होंने सामाजिक कार्यों में वकालत को बाधक समझकर उसे छोड़ने का निश्चय किया तो उनके पिता को गहरी निराशा हुई और उन्होंने उसका विरोध किया। इस सम्बंध में लालाजी ने लिखा है– "वकालत का पेशा मेरी पसंद का न था। मैं उसे छोड़कर सारा समय देश–सेवा में लगाना चाहता था परन्तु मेरे पिताजी इस विचार से सहमत न थे और इस सम्बंध में मेरे रास्ते की रूकावट बने हुए थे। वे चाहते थे कि मैं धन जमा करूं और अपने भाइयों तथा बच्चों के लिए धन की व्यवस्था करूं। किन्तु मेरा उत्तर था– "मैंने अपने भाइयों को शिक्षा

दिलाने की उचित व्यवस्था करके अपना कर्त्तव्य पूरा कर दिया है और अपने बच्चों के पालन–पोषण के लिए मेरे पास काफी राशि है।''

यह रस्साकशी काफी समय तक चलती रही और तभी समाप्त हुई, जब उन्होंने (लाला लाजपतराय ने) लाहौर आर्यसमाज की शताब्दी के अवसर पर वकालत के काम को सीमित करने और अपना अधिकाधिक समय कालेज, समाज तथा देश की सेवा के लिए देने की घोषणा कर दी।

उसके बाद तो उन्होंने व्यवस्थित ढंग से अपने मुवक्किलों के काम में कमी लानी शुरू कर दी। अंततः, उन्होंने यह निर्णय ले लिया कि वे जो कुछ भी वकालत से कमायेंगे, स्वयं नहीं लेंगे। उन्होंने इस निर्णय की सूचना अपने मित्र तथा डी.ए.वी. कालेज के प्रिंसिपल श्री हंसराज को दे दी तथा उन्हें जो कुछ भी वकालत से प्राप्त होता, वे उसे डी.ए.वी. कालेज या समाज को दे देते थे। ऐसा करने का उनका मुख्य उद्देश्य धन की लालसा को समाप्त करना तो था ही, साथ ही यह सुनिश्चित भी करना था कि लक्ष्मी–भंडार में वृद्धि उनके तथा उनकी निष्ठाओं के बीच बाधक न बने। लालाजी ने अपना सारा धन और कमाई राष्ट्रीय कार्यों में अर्पित कर दी। उन्होंने वह मकान जहां से उन्हें 1907 से निर्वासित किया गया था, लोकसेवक–मण्डल को दान में दे दिया और स्वयं उसकी बगल में एक जीर्ण–शीर्ण पुराने मकान में रहने लगे। लोकसेवा के लिए उन्होंने अपना सर्वस्व न्यौछावर कर दिया।

बहुमुखी व्यक्तित्व और सेवाएं

लालाजी अग्रवाल वैश्य–समाज की ही नहीं, सम्पूर्ण राष्ट्र, अथवा विश्वसमाज की विभूति थे। वे एक इंसान नहीं, आंदोलन थे। आंदोलन से भी बढ़ कर वे देश की लाखों–करोड़ों जनता के हितैषी एवं प्रेरणा–स्रोत थे। उन्हें न केवल इसलिए याद किया जाएगा कि उन्होंने देश की आजादी के लिए अपना सर्वस्व होम कर दिया, अपितु इसलिए भी स्मरण किया जायेगा, क्योंकि उन्होंने राष्ट्र को अपना धर्म, जनसेवा को उसकी पूजा, लेखनी को सबसे बड़ी सम्पदा और हृदय को मंदिर मानते हुए एवं मानव–जाति की अमूल्य सेवा की है और उच्च आदर्श प्रस्तुत किए।

आपकी प्रतिभा और सेवाएं बहुमुखी थीं। आप आर्यसमाज के स्तंभ थे, हिन्दूसमाज के आधार थे, दलितों–पिछड़ों–महिलाओं के आश्रय

एवं अवलम्ब थे। उन्हें सोते, उठते, बैठते, जागते केवल देश का ही ध्यान रहता था। आप एक अच्छे लेखक, वक्ता और उच्चकोटि के राष्ट्रभक्त थे। पंजाब की सामाजिक एवं राजनैतिक चेतना के तो जैसे प्राण ही थे।

राजनैतिक क्षेत्र में पग बढ़ा कर वे कभी पीछे नहीं हटे। यातनाएं सहीं, जेल गए, विदेशों में घूमे, देश से निर्वासित किए गए, काले पानी की सजा को भोगा किन्तु उनकी सिंह–गर्जना में कोई अंतर नहीं आया। जिस प्रकार सोने को आग में तपाने से वह निखरता है, उसी प्रकार लालाजी कष्टों की अग्नि में तप कर निखरते गए। उनकी तप–त्याग और देशभक्ति की भावना और उज्ज्वल होती गई। वे अपने जीवन के काफी समय तक विदेश में रहे और उन्होंने भारत का प्रतिनिधित्व किया तथा स्वाधीनता–संग्राम के लिए विश्व भर से सद्भावना प्राप्त की।

लालाजी की मृत्यु के समय उनकी आयु 64 वर्ष की थी और वे अपने को कुछ थका हुआ अनुभव करने लगे थे, फिर भी उनका साहस, स्फूर्ति, विवेक व कार्य करने की क्षमता नौजवानों जैसी और किसी–किसी अंश में उनसे भी अधिक थी। वे लगभग 40 वर्ष तक सतत देश–सेवा में लगे रहे। उन्होंने उस समय देशसेवा का व्रत धारण किया, जबकि कितने ही नेताओं ने धोती पहनना तक न सीखा था। उनमें राष्ट्रीयता की भावना प्रबल थी किन्तु उनकी यह राष्ट्रीयता उनके हिन्दू–धर्म, सभ्यता एवं संस्कृति–प्रेम में कही बाधक न थी। उन्होंने आधुनिकता के मिथ्या आडम्बर में बृहत्तर हिन्दू–समाज के हितों को नहीं भुलाया और न ही धर्म की उपेक्षा की। यह उनकी सबसे बड़ी विशेषता थी। वे सच्चे राष्ट्रवादी होते हुए भी हिन्दू–समाज के कुशल कर्णधार बने रहे।

उन्होंने व्यापक अर्थ में धर्म का समर्थन किया और देशवासियों को चेतावनी देते हुए कहा– "वे धर्म को जीवन से निष्कासित न करें अन्यथा उसे परिणाम खतरनाक होंगे।" उनमें पूर्व और पश्चिम, नूतन और पुरातन का भी अद्भुत समन्वय था।

लालाजी भारतीय राजनीति में उग्रदल का प्रतिनिधित्व करते थे किन्तु गांधीजी के विरोधी न थे। वे पराधीनता में ही पैदा हुए और पराधीनता में ही मृत्यु को प्राप्त हुए किन्तु मरते–मरते उन्होंने घोषणा की– "उनके शरीर पर लाठी का किया गया प्रत्येक प्रहार ब्रिटिश साम्राज्य के ताबुत में अंतिम कील सिद्ध होगा।" उनकी यह भविष्यवाणी सही सिद्ध हुई और कोटि–कोटि भारतीयों ने ब्रिटिश साम्राज्य को बोरिया–बिस्तर बांध कर जाते देखा।

लालाजी की मृत्यु और उसका बदला

लाला लाजपतराय की मौत और बलिदान सामान्य न था। उसने लाखों देशभक्तों और क्रांतिकारियों को झकझोर कर रख दिया। एक मामूली से सिपाही के हाथों लाला लाजपतराय की मृत्यु से सम्पूर्ण राष्ट्र आहत हो उठा। ये देश के तीस करोड़ देशभक्तों का अपमान था। उनकी मृत्यु पर सरदार भगतसिंह और अन्य देशभक्तों ने प्रतिज्ञा की कि वे इस मौत का बदला लेकर रहेंगे।

कलकत्ता में आयोजित एक श्रद्धांजलि सभा में देशबंधु चितंरजन दास की पत्नी श्रीमती वसन्ती देवी ने अपनी कलाई की चूड़ियां उतार कर नौजवानों पर फेंकते हुए कहा था– "लाला लाजपतराय की मृत्यु देश के नौजवानों के लिए कलंक है। राष्ट्रीय अपमान के इस घूंट को पीकर उन्होंने भारत की नारियों को इस बात के लिए विवश किया है कि वे बदला लेने के लिए आगे आएं।" इस घोषणा को सुनकर सरदार भगतसिंह और अन्य क्रांतिकारियों का खून खौल उठा। उन्होंने साण्डर्स तथा लाला लाजपतराय की हत्या करने वालों से बदला लेकर इस राष्ट्रीय अपमान को धोने की घोषणा की और वीर भगतसिंह ने कहा– "वह व्यक्ति मेरे हाथों ही मारा जाना चाहिए।"

17 दिसम्बर 1928 को भगतसिंह और उसके साथियों ने सचिवालय के बाहर साण्डर्स को मौत के घाट उतार खून से लिखे पुर्जे को बांटा और कहा– "लाला लाजपतराय की मौत का बदला ले लिया है और राष्ट्रीय अपमान का कलंक धो दिया है।

आज दुनिया ने देख लिया होगा कि भारत का पौरुष अभी तक मरा नहीं है और उसकी नसों में ठंण्डा पानी नहीं बहता। अपने गौरव की रक्षा के लिए भारतीय कौम बड़ी से बड़ी कुर्बानी दे सकती है।" सचमुच ऐसा उद्‌गार व्यक्त करते समय उनकी भावनाएं सम्पूर्ण राष्ट्र की ध्वनि को प्रतिध्वनित कर रही थीं।

इसी क्रम में 8 अप्रेल 1929 को भगतसिंह एवं बटुकेश्वरदत्त ने असेम्बली में बम–विस्फोट किया, जिसने सम्पूर्ण अंग्रेजी सत्ता को हिला कर रख दिया था। श्रीमद्‌भागवत गीता के शब्दों में– "श्रेष्ठ पुरुष जिस अनुकरणीय मार्ग का प्रवर्त्तन करते हैं, अन्य सामान्य लोग उसका अनुसरण करते हैं।" लाला लाजपतराय ने इसी प्रकार का महान आदर्श देशवासियों के सम्मुख रखा था।

जवाहरलाल नेहरू ने उस समय लिखा था– "भगतसिंह अपनी क्रांतिकारी गतिविधियों के कारण लोकप्रिय नहीं हुए, अपितु इसलिए कि उन्होंने लाला लाजपतराय के सम्मान को बचाया और उसके द्वारा देश के गौरव को ऊंचा किया।

लालाजी और अग्रवाल वैश्य–समाज

लाला लाजपतराय सम्पूर्ण देश के नेता थे किन्तु अग्रवाल मुकुटमणि थे, जाति के गौरव थे। वे इस महान समाज में जन्म लेकर जितने गौरवान्वित हुए, उससे कहीं अधिक अग्रवाल–समाज उनसे गौरवान्वित हुआ।

राष्ट्रीय स्तर के नेता होते हुए भी उन्होंने अग्रवाल–समाज को भुलाया नहीं। दिल्ली के अष्टम अखिल भारतीय अग्रवाल–महासभा के अधिवेशन में वे स्वयं सम्मिलित न केवल हुए अपितु उन्होंने बड़ा ही प्रेरणापूर्ण उद्‌बोधक सम्बोधन देशवासियों को दिया। वे वैश्य–कान्फ्रेंस के अधिवेशन में सम्मिलित होने के लिए स्वयं मेरठ भी पधारे थे। मारवाड़ी अग्रवाल–पत्रिका द्वारा संदेश मांगे जाने पर उन्होंने लिखा था– "मेरे दिल में मारवाड़ियों के प्रति बड़ी श्रद्धा है।

मैं व्यापार में उनके पुरूषार्थ और वणिक–वृत्ति की बहुत प्रशंसा करता हूं। मैं यह देख कर बहुत प्रसन्न हूं कि इस समाज में जागृति पैदा हो रही है। मैं चाहता हूं कि यह जमात अपनी सामाजिक बुराइयों को दूर कर सबसे आगे प्रगति के पथ पर बढ़े।

उन्होंने अग्रवाल वैश्य–समाज की दानशीलता की भावना की भी बहुत प्रशंसा की और कहा– "जब तक अग्रवाल–समाज में इस प्रकार की दानशीलता की भावना बनी रहेगी, समाज का गौरव भी दुनिया भर में ऊंचा रहेगा।"

उपसंहार

लाला लाजपतराय ने अपने जीवन द्वारा देश की लाज और पत दोनों रखी। उन्होंने अपने जीवन को उन कार्यों के लिए समर्पित कर दिया, जिनके लिए जननी और जन्मभूमि अपनी कोख से संतति को जन्म देते हैं। कहा भी है–

जननी जनै तो वीरजन, या दाता या शूर।
नहिं तो जननी बांझ रहे, मत खोवे तू नूर।।

लालाजी की मृत्यु के फलस्वरूप 30 करोड़ भारतवासियों के सिर श्रद्धा से झुक गए। लालाजी की स्मृति में लाहौर में एक विशाल स्मारक का निर्माण कराया गया, जिसे स्वतंत्रता–प्राप्ति के बाद शिमला में स्थानान्तरित कर दिया गया। शिमला में उनकी एक भव्य प्रतिमा भी माल रोड़ के सामने लगाई गई।

दिल्ली में लाला लाजपतराय के नाम पर एक मार्केट एवं कालोनी की स्थापना की गई। लाजपत–भवन के नाम से एक सांस्कृतिक केन्द्र की स्थापना भी की गई, जो विभिन्न सांस्कृतिक गतिविधियों को संचालन करता है।

राष्ट्र ने श्रद्धांजलि–स्वरूप संसद के केन्द्रीय हाल में लाला लाजपतराय की आदमकद प्रतिमा लगाई और देश के कोने–कोने में उनकी मूर्तियां स्थापित कीं। उनके नाम पर अनगिनत पार्कों, सार्वजनिक स्थानों, मार्गों, संस्थाओं का नामकरण किया गया।

भारत सरकार ने उनकी स्मृति–स्वरूप 28 जनवरी 1965 को 15 पैसे का डाकटिकट जारी किया।

निःसंदेह भारतीय इतिहास के शहीदों के पृष्ठों में अपनी गहरी रेखाओं से लिखा जाने वाला अग्रकुलोत्पन्न लाला लाजपतराय का नाम होगा और जब तक आकाश में सूर्य–चंद्र चमकते रहेंगे, लाला लाजपतराय का नाम भी तेजस्विता से आलोकित रहेगा।

पावन चरित्र महापुरुषों के हमें कराते ध्यान।
हम भी अपने चरित्र बना सकते दिव्य महान।
महाविदा क़े समय जगत से जा सकते साह्लाद।
क्षणभंगुर जग में अंकित कर स्मृति के अमर निशान।
जय भारत! जय लाला लाजपतराय महान।

✦✦✦

लाला लाजपत राय के अनमोल बोल

1. कोई जाति स्वाधीन होने की अधिकारिणी नहीं, जो अपनी स्वतंत्रता स्वयं जीतने में असमर्थ है और आवश्यकता पड़ने पर उसके लिए युद्ध करने को उद्यत नहीं होती।

2. बाह्य सहायता के द्वारा जीती हुई स्वतंत्रता के शीघ्र खो जाने की आशंका रहती है। जातियों का निर्माण स्वयं उनके प्रयत्नों से होना चाहिए।

3. राष्ट्र एवं समाज की सबसे बड़ी आवश्यकता समय देने वाले कार्यकर्त्ताओं की है, जिन्होंने आत्मत्याग का व्रत ले रखा हो।

4. जिस दिन हम हिन्दू–सभ्यता व संस्कृति से मुख मोड़ लेंगे, उस दिन हम भी नहीं रहेंगे।

5. जिस व्यक्ति को जातीय गौरव और आत्मसम्मान का ध्यान नहीं, वह जीवित होते हुए भी मृत है।

6. सिद्धान्त के लिए कष्ट सहना सीखो।

7. क्या अब इस संसार में हिन्दुस्तान नाम का कोई देश नहीं रहेगा? क्या हिन्दू–जाति सदैव के लिए नष्ट हो जाएगी?

क्या अंग्रेजों की कूटनीति सफल होगी? भगवन्! सद्प्रेरणा दो ताकि किसी तरह इस पतित मानव–जाति की रक्षा की जा सके। कोई युक्ति बताओ, कोई रास्ता बताओ, जिससे साम्प्रदायिकता के इस विषैले नाग को विध्वंस किया जा सके।

8. धर्म के बहुत से लक्षण हैं किन्तु सबसे बड़ा चिह्न है– अन्न की शुद्धता। जिसका व्यापार शुद्ध है, कमाई पुण्य की है, उसका अन्न भी शुद्ध है। सच्चा वैश्य वही है, जो अपनी पवित्र नेक कमाई द्वारा पुण्यार्जन करे।

9. अगर कोई ऐसा आदमी है, जो देश और जाति की सेवा को अपना कर्तव्य नहीं समझता, तो उससे कहो– "तुम्हें मनुष्य का शरीर तो जरूर मिला है किन्तु तुम वास्तव में मनुष्य नहीं बन पाए।

10. कोई मनुष्य बड़ा नहीं, यदि वह स्वार्थ–सिद्धि में मतवाला है। कोई जाति बड़ी नहीं, यदि वह जोश से रहित है, कोई मनुष्य धार्मिक नहीं, यदि वह मानवसेवा को अपना कर्त्तव्य नहीं मानता।

11. मैं इस बात को आवश्यक समझता हूं कि हम मनुष्य को केवल मनुष्य होने के नाते प्यार करें, न कि उसकी सम्पत्ति, विद्या या पद के कारण। यदि हिन्दू अपना आध्यात्मिक गुण खो बैठेंगे तो मनुष्यता एक दम दरिद्र हो जाएगी।

12. हमारी माता जिसके गर्भ में हम पैदा हुए हैं, जन्मभूमि, माता और गौमाता – इन तीनों माताओं की सेवा जिसने नहीं की, वह कपूत है और उसे जन्म ही नहीं लेना चाहिए था।

13. अग्रवाल वैश्य–समाज धर्म के कार्यों में सदैव आगे रहता आया है और जब तक यह जाति इस प्रवृत्ति को बनाए रखेगी तब तक समष्टि में उसका नाम ऊंचा रहेगा।

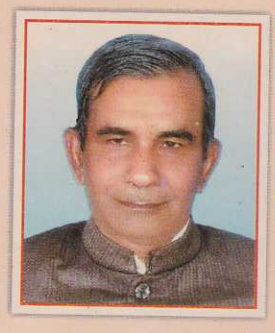

लेखक परिचय

डॉ.चम्पालाल गुप्त

डॉ. चम्पालाल गुप्त अग्र-साहित्य के जाने-माने लेखक हैं। आपको अग्रोहा विकास ट्रस्ट द्वारा प्रकाशित देश-विदेश में लोकप्रिय 'अग्रोहाधाम' पत्रिका के मानद सम्पादक होने का श्रेय प्राप्त है। आपकी 'अग्रोहा-एक ऐतिहासिक धरोहर, अग्रोहा की कहानी, अग्रवाल जाति का ऐतिहासिक परिचय, नये निबन्ध, शिष्ट बनो, सभ्य कहलाओ जैसी कई कृतियां प्रकाशित हो चुकी हैं और आपके समसामयिक एवं सामाजिक विषयों पर लेख देश की विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होते रहते हैं। आप आकाशवाणी के वार्ताकार भी हैं।

आपने देश-विदेश में घूमकर 'वैश्य समुदाय का भारतीय समाज की प्रगति में योगदान' विषय पर शोधकार्य किया है। श्री सुमित्रानंदन पंत के काव्य में युगबोध विषय पर आपको राजस्थान विश्वविद्यालय से पी.एच.डी. उपाधि प्राप्त की है। आपने अनेक पत्र-पत्रिकाओं का सम्पादन किया है, जिनमें कतिपय राज्य स्तर पर पुरस्कृत हुई हैं।

आप महर्षि दयानंद स्नातकोत्तर महाविद्यालय श्रीगंगानगर में हिन्दी विभागाध्यक्ष के रूप में सेवारत रहे हैं। आप महाराजा अग्रसेन अध्ययन संस्थान के संचालक हैं और आपके पास अग्र-वैश्य समुदाय से संबंधित साहित्य का विपुल संग्रह है।

आप विभिन्न सामाजिक संस्थाओं से जुड़े हैं। अग्रोहा विकास ट्रस्ट व महाराजा अग्रसेन चेरिटेबल ट्रस्ट के ट्रस्टी हैं। अग्रोहा विकास ट्रस्ट द्वारा प्रवर्तित मेजर रामप्रसाद पोद्दार के राष्ट्रीय पुरस्कार 2004 से आप सम्मानित किये गये हैं।

आप विभिन्न सामाजिक एवं साहित्यिक गतिविधियों के लिये अग्रोहा विकास ट्रस्ट, अग्रवाल निर्देशिका समिति, अग्रोहा विकास समिति, लॉयन्स क्लब आदि संस्थाओं द्वारा सम्मानित किये जा चुके हैं।

शेरे पंजाब- लाला लाजपतराय आपकी जीवनी पुस्तक है, जो लालाजी के समग्र व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर संक्षिप्त रूप से प्रकाश डालती है।

सम्पर्क : 3 बी-15, मीरा मार्ग, जवाहरनगर, श्रीगंगानगर